Title Code-MAHHIN1372

कृष्ण प्रज्ञा

आस्था • विवेक • वर्तमान

Vol.-1, Issue-2. Mumbai. November 2022. Hindi Monthly. Pages-108. Price-Rs. 400/-

चित्रकार || प्रणय गोस्वामी

जिज्ञासा विशेषांक

Colouring outside the box,
since 1986...

Over 3 decades of designing communication
that is super strategic,
a little natkhat and wholly divine!

THE crayons NETWORK

www.thecrayonsnetwork.com

STRATEGY CREATIVE DIGITAL MEDIA EVENT OOH

पुष्कर सिंह धामी

मुख्यमंत्री, उत्तराखण्ड

उत्तराखण्ड सचिवालय,
देहरादून - 248001
फोन : 0135-2650433
0135-2716262
फैक्स : 0135-2712827

कैम्प कार्यालय
फोन : 0135-2750033
0135-2750344
फैक्स : 0135-2752144

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि मुम्बई से **'कृष्ण प्रज्ञा'** मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। भगवान श्री कृष्ण ने मनुष्य को निष्काम कर्म के लिए सदैव समर्पित रहने, दीन–दुखियों एवं समाज के उपेक्षित वर्ग के कल्याण का संदेश दिया है। उनका जीवन संपूर्ण मानव जाति को अन्याय एवं अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष की प्रेरणा देता है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में भक्ति, ज्ञान, योग व कर्म का जो संदेश दिया है वह आज भी प्रासंगिक है। गीता पूरी दुनिया को मानवता का संदेश देती है। मानव जाति के साथ इसकी सदैव प्रासंगिकता बनी रहेगी। कृष्ण भारत के अंतःकरण की प्रेरणा हैं। **'कृष्ण प्रज्ञा'** प्रत्रिका में बुद्धिजीवियों एवं चिंतकों के लेख भगवान योगेश्वर कृष्ण के कालजयी जीवन दर्शन एवं सिद्धांतों को जन–जन तक पहुंचाने में सफल होंगे, ऐसी आशा है।

मेरी ओर से पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिये हार्दिक बधाई एवं शुभकामनायें।

(पुष्कर सिंह धामी)

स्वातंत्र्याचा अमृत महोत्सव

सत्यमेव जयते

उप मुख्यमंत्री
महाराष्ट्र राज्य

दि. २३.११.२०२२

शुभकामनाएं

'कृष्ण प्रज्ञा' का प्रवेशांक-परिचय विशेषांक प्राप्त हुआ. इसकी भव्य परिकल्पना और सुंदर पाठ्यसामग्री बेहद विशेष है.

भगवान श्रीकृष्ण वास्तव में मात्र धर्म, सम्प्रदाय, पंथ और राष्ट्रीयता तक सीमित नहीं, यद्यपि एक वैश्विक सत्य हैं. वे भारतीय संस्कृति के अद्भुत अनंत हैं. भगवान श्रीकृष्ण के जीवन से जहाँ आनंद की अनुभुति मिलती है, तो श्रीमद् भगवतगीता से ज्ञान का भंडार सम्पूर्ण विश्व के सामने खुला हुआ है. यही कारण है, गीता मात्र भारत में नहीं तो पूरे विश्व में पूजी जाती है. मानव कल्याण का विशाल भंडार गीता में हम पाते है. किसी भी उम्र में, कितनी बार भी पढो, गीता हर बार एक नए स्वरूप में हमारे सामने आती है.

श्रीकृष्ण के दर्शन की प्रासंगिकता आज के समय में वैसे ही बनी हुई है, जैसे द्वापर के क्रांतिकाल में रही थी. मानव कल्याण का यह एक विशाल स्वरुप है. यह मानव कल्याण के प्रयास अगले पीढीयों तक पहुँचाने के आपके प्रयास को ढेर सारी शुभकामनाएं. मैं आशा करता हूँ कि यह प्रयास आगे भी जारी रहेंगे. 'कृष्ण प्रज्ञा' की सम्पूर्ण टीम को मैं ढेर सारी बधाई देता हूँ.

(देवेंद्र फडणवीस)

श्री. पवन के.सेठी
संपादक/प्रकाशक

समर्पण

ज्ञा 'ज्ञान यज्ञ' के प्रथम चरण 'परिचय विशेषांक को पाठकों का अपार स्नेह और प्रशंसा मिली। 'कृष्ण प्रज्ञा' परिवार का प्रत्येक सदस्य अनुग्रहित और प्रेरित है। यह तो होता ही है जैसे कोई बालक पहला कदम आगे बढ़ाता है तो जहाँ उसकी हर्ष मिश्रित आशंका में साहस का अद्भुत भाव प्रदर्शित होता है, उसी के साथ आसपास के संरक्षकों का प्रोत्साहन उसे अगला कदम बढ़ाने के लिए उत्साहित करता है, वही स्थिति 'कृष्ण प्रज्ञा' परिवार की है। हृदयतल से आभार व्यक्त करने का एक ही तरीक़ा है, अगले अंक को और भी लगन से प्रस्तुत किया जाए। यही कामना और प्रीति भाव से 'जिज्ञासा विशेषांक' की रूपरेखा बनायी गई है। इसकी प्रेरणा श्रीमद्भगवदगीता के अध्याय सात के सोलहवें श्लोक से मिली-

चतुर्विधा भजन्ते मां जना: सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।

(हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! पवित्र कर्म करनेवाले अर्थार्थी आर्त जिज्ञासु और ज्ञानी अर्थात् प्रेमी ये चार प्रकार के मनुष्य मेरा भजन करते हैं अर्थात् मेरे शरण होते हैं।)

जिज्ञासा उन अग्रदूत के बारे में, द्वापर पुरुष कृष्ण के बारे में, जिनके व्यक्तित्व में अद्वितीय विभिन्नता है, अनंत आयाम हैं, जिनकी चेतना सब ओर बिखरी है। उन्हें जितना जानो उतना ही उनके भावरस में डूबते जाओ। सरलता और गम्भीरता भरे जन जन के उद्धारक, लोकरंजक कृष्ण, जो ज्ञान, राजनीति, धर्म, साधना के शिखर हैं। वे सब के प्रिय कृष्ण जो कर्म को लीला और प्रेम को मानवीय हृदय की विशिष्टतम रसधार में बदल दें।

कृष्ण भारतीय धर्म, संस्कृति, साहित्य, संगीत, नृत्य, चित्रकारी, मूर्तिकारी और लोक जीवन के रंगों में रचे बसे हैं। जहां देखो वहाँ कृष्ण बसे हैं। तभी तो भारतीय सांस्कृतिक एकता के सूत्र कहे जा सकते हैं, कृष्ण।

कृष्ण जैसा कोई और कहाँ दिखता है? 'न भूतो न भविष्यति'। उनको देखते ही हृदय भावों से भर जाता है- व्यक्तित्व की निर्द्वंदता, अनासक्त निष्काम कर्म से भरे, गोपियों के रसिया छलिया, यशोदा के दुलारे, गिरिराज, सुदर्शन चक्रधारी, मुरलीधर, कर्मयोगी, योगी, शांतिदूत, अद्भुत योद्धा, महान सारथी, गीता के गायक, स्थितप्रज्ञ। कालिदास के गोपवेषधारी कृष्ण, चैतन्य के राधाकृष्ण, नरसी के साँवरिया, सूर के श्याम, रसखान के किशन, मीरा के नटवर नागर और वल्लभाचार्य के लीलाधर। जिसने जैसे देखा वैसे दिखे कृष्ण। सत्य यह है वे परब्रह्म हैं। वे पृथ्वी पर अपनी परम सत्ता को छोड़ साधारणता वरण किए हुए हैं। इतना सब सुन, पढ़, जान कर मन नहीं भरता। जिज्ञासा बढ़ती जाती है। फिर उन्हें पाने का मार्ग जिज्ञासा भी तो है, उन्हीं ने गीता में कहा। तभी तो एक विद्वान उनका सही काल खोज रहा है, दूसरा उनकी चेतना ब्रह्मांड में तलाश रहा है, कोई उनके पदचिन्ह खोज रहा है, कोई उनकी 16 कलाओं और आठ के अंक से उनका संबंध खोज रहा है। किसी को जन जन में कृष्ण की प्रतीति हो रही है, तो कोई जित देखे तित कृष्ण दिखे से अनुप्राणित है। उनके प्रेम रस में डूबे ISKCON के संस्थापक ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद जी जैसी विभूति के जीवन के प्रेरक प्रसंग बता देते हैं जब कृष्ण का रँग चढ़ता है तो दीवानगी क्या होती है!

मैं यही कहूँगा कृष्ण की प्रज्ञा ने सदा भारत की प्रज्ञा को प्रेरित किया है। कृष्ण के प्रेम और धर्म के संदेश जन-जन में बसे हैं। इसीलिये हम उनका वंदन और अर्चन करते हुए निरंतर प्रेरित होते हैं। 'जिज्ञासा विशेषांक' आप को समर्पित है, जिसमें प्रणय गोस्वामी के चित्र हैं। प्रणय 'vision of Blue God' के नाम से कृष्ण की लीलाओं के चित्र बनाते हैं। उनके चित्रों की नीलिमा से सुसज्जित है यह विशेषांक। मेरा अनुरोध है आप इसे स्वीकारें और 'कृष्ण प्रज्ञा' का आनंद प्रसाद लें। 'जय श्रीकृष्ण'।

॥ पवन के. सेठी

स्वतंत्र लेखन, मीडिया में 35 वर्षों से लेखन से जुड़े हुए, प्रखर वक्ता, कवि, चिंतक और दार्शनिक।

हमारे कर्मयोगी

पवन के. सेठी ||
प्रकाशक और प्रधान संपादक

केवलं कृष्णं शरणं मम

संपादक मंडल हिंदी

आचार्य संजीव वर्मा 'सलिल' ||
संपादक- हिंदी भाषा विषय वस्तु और काव्य संपादक

पंडित भवनाथ झा ||
संपादक- संस्कृत भाषा विषय वस्तु

नर्मदा प्रसाद उपाध्याय ||
संपादक- भारतीय भित्ति चित्र और लोक कला

विवेक अग्रवाल ||
संपादक- संचालन

डॉ. रविंदर कुमार गुप्ता ||
संपादक- श्रीमद्भगवदगीता विषयक सामग्री

डिज़ाइन, तकनीकी और कार्मिक विभाग

जैन कमल ||
डिज़ाइन संपादक, टाइपोग्राफ़र और प्रकाशन विशेषज्ञ

विश्वतोष दास ||
विज्ञापन और कला सलाहकार

हेमंत चव्हाण ||
प्रतिमा एडवरटाइज़िंग
संपादक- मुद्रण और रूप सज्जा

चंद्रकांत विद्यार्थी ||
संपादक- वित्त और वाणिज्य

संपादक मंडल अंग्रेज़ी

प्रोफ़ेसर डॉ. अविनाश कपूर ||
संपादक- अध्यात्म और विज्ञान

प्रोफ़ेसर अनिल जैन ||
संपादक – गद्य और पद्य

गुरशील वालिया ||
संपादक-भारतीय दर्शन और सामयिक साहित्य

वीनू जिंदल ||
संपादक- भारतीय दर्शन और भाषा

डॉ. चरणसिंह केदारखंडी ||
संपादक- भारतीय दर्शन और आधुनिक विचार

विपुल कुशवाह ||
प्रमुख- तकनीकी डिजिटल

सौम्या वंदित कुशवाह ||
निर्देशक- मीडिया डिजिटल

आशा सेठी ||
सलाहकार- कार्यालय और लेखा

कृष्ण प्रेमी

संरक्षक

डॉ. अनिल काशी मुरारका ||
कर्मयोगी और मानवतावादी मार्गदर्शक

बी. डी. अग्रवाल ||
लोकोपकारक और प्रयोगधर्मी मार्गदर्शक

डॉ. पवन कंसल ||
सफल व्यवसायी, कर्मठ समाज सेवी, अनन्य कृष्ण प्रेमी

विषय और प्रारूप परिकल्पना परामर्श मंडल

डॉ. आशुतोष अंगिरस ||
परामर्शकर्ता -संस्कृत और आध्यात्मिक साहित्य

अर्जुन सिंह राठौड़ ||
जन-हितैषी और अनन्य कृष्ण भक्त

डॉ. आनंद सिंह ||
परामर्शक़र्ता - भारतीय संस्कृति और हिंदी साहित्य

पंकज नारायण ||
परामर्शकर्ता-मीडिया, संस्कृति कर्मी

डॉ. शैलेंद्र कृष्ण भट्ट ||
परम्परागत और आदिवासी कला संरक्षक

अशोक विट्ठलराव जाधव ||
परामर्शकर्ता- कला और रूप सज्जा

शोभा सादानी ||
परामर्शकर्ता-कला और सांस्कृतिक विभाग और संयोजिका

सागर कदम ||
परामर्शकर्ता-विधि विषयक

एडवोकेट. स्मिता राहुल चिपळूणकर ||
परामर्शकर्ता- विधि विषयक

Printed, published and owned by Pawan Kishorilal Sethhi, printed at Millenium Arts, Gala No. D-20, Akurli Industrial Estate, Akurli Road, Kandivali, (East), District-Mumbai, Pin code- 400101, Maharashtra and Published at Flat No. A-604, Sheraton Classic, Charat Singh Colony, Chakala, Andheri (East), District-Mumbai Pin Code-400093, Maharashtra. EDITOR- PAWAN KISHORILAL SETHHI

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी पवन किशोरीलाल सेठी, द्वारा मिलेनियम आर्ट्स, गाला नम्बर- डी-20, आकुर्ली इंडस्ट्रीयल इस्टेट, आकुर्ली रोड, काँदीवली (पूर्व), ज़िला- मुंबई, पिनकोड- 400101 से छपी और फ़्लैट नम्बर ए - 604, चरत सिंह कॉलोनी, चकाला, अंधेरी (पूर्व), ज़िला- मुंबई, पिनकोड- 400093, महाराष्ट्र से प्रकाशित। संपादक- पवन किशोरीलाल सेठी

प्रकाशित और वितरित- मासिक.
टाइटल कोड- MAHHIN1372

मुद्रणालय: मिलेनियम आर्टस ||

(सभी अधिकार सुरक्षित हैं। प्रकाशक, कलाकार या लेखक की पूर्व अनुमति के बिना पत्रिका में प्रकाशित किसी भी सामग्री का आंशिक या संपूर्ण, या किसी भी भाषा या प्रारूप में पुनरुत्पादन या व्याख्या पूर्णतः वर्जित है।)

सुझाव और प्रतिक्रिया हेतु ईमेल आईडी:
editor@krishnpragya.com
सम्पर्क: +91 9820227518 www.krishnpragya.com

8 देवकीपुत्र वासुदेव कृष्ण और महाभारत काल के कृष्ण की तिथि

इतिहास में श्रीकृष्ण के होने के प्रमाण हैं? – एक कृष्ण का जन्म 25 मई 11153 ई.पू. हुआ तथा दूसरे महाभारत काल के देवकीपुत्र वासुदेव कृष्ण 3223-3126 ई.पू. के आसपास हुए। ।। वेदवीर आर्य

18 महाभारत के कृष्ण कब हुए?

महाभारत के कृष्ण का जन्म 5633ई.पू. में हुआ था। लेखक ने कंसवध, महाभारत युद्ध आदि प्रमुख घटनाओं की तिथियों की गुत्थी भी सुलझाई है।
।। नीलेश नीलकंठ ओक

42 ब्रह्माण्ड नायक कृष्ण

पुराणों में ब्रह्मवैवर्त कृष्णचरित का वर्णन करने वाला नवीन पुराण है, किन्तु उन्हें निर्गुण परमतत्त्व परब्रह्म के रूप में स्थापित करने में इसने बड़ी भूमिका निभाई। ।। योगेश कुमार मिश्र

25 विश्व में श्रीकृष्ण के पदचिह्न

श्रीकृष्ण का आकर्षण है कि वे विश्व के श्रद्धालुओं को आकृष्ट करने में सक्षम हैं। विभिन्न देश और मतों के अनुयायी भी कृष्णभक्ति में झूमते हुए एक साथ बैठकर भजन-कीर्तन करने लगते हैं।
।। नित्यानंद चक्रवर्ती

45 कृष्ण और राधा-तत्त्व

क्या कृष्ण की अनन्य सहचरी राधा काल्पनिक हैं? राधा का विवेचन 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में हुआ है। लेखक ने इसी पुराण के आधार पर यहाँ राधा का परिचय दिया है।
।। डॉ. अनन्त मिश्र

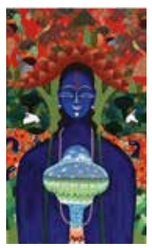

32 कृष्ण-चेतना और ब्रह्मांड

परमाणु के प्रोटॉन और इलेक्ट्रॉन के बीच एक ऊर्जा भरी हुई है, जो ब्रह्माण्डीय चेतना है। वही ऊर्जा गीता और भागवत की कृष्ण-चेतना है, जो ब्रह्माण्ड का संधारण करती है।
।। प्रो. डॉ. अविनाश कपूर

48 कृष्ण की सोलह कलाएँ

श्रीकृष्ण सोलह कलाओं से भरपूर हैं। कलाएँ भगवत् तत्त्व का वह अंश है, जो सोलह पर जाकर पूर्ण होता है। कैसे जीवों, मनुष्यों एवं अवतारों में भी कलाएँ होतीं हैं इसे हम जानें।
।। प्रो. डॉ. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा

37 सूक्ष्म से विराट– कृष्ण

कृष्ण ने अपने विराट् स्वरूप का दर्शन चार अवसरों पर कराया है। आइए हम भी यह दर्शन करें।
।। डॉ. गिरीश्वर मिश्र

52 नारायण, विष्णु और कृष्ण एक विवेचना

शब्द अपनी यात्रा में नई भाषा के साथ घुलमिल जाते हैं। संस्कृत में कई शब्द दूसरी भाषा से आए। इन्हीं में से 'नारायण', 'विष्णु' और 'वासुदेव' इन शब्दों का यात्रा-वृत्तान्त पढ़ें।
।। डॉ. मोहन गुप्त

57 कृष्ण के बाँके बिहारी होने का चिंतन

अवतारी कृष्ण की अनेक छवियाँ और नाम हैं। कहीं वे दार्शनिक हैं तो कहीं बाँके बिहारी। क्यों हैं कृष्ण बाँके बिहारी? क्या है यह बाँकपन?
।। डॉ. सुनील कुमार पाठक

61 नवरस और कृष्ण

कृष्ण के चरित में मूल रस क्या है? रासलीला या गीता की योग-लीला? शान्त, वात्सल्य और भक्ति, ये रस माने जाने के कारण कृष्ण का परम रस निर्वेद ओझल होता गया।
।। डॉ. विनोद शाही

65 श्रीकृष्ण और आठ अंकों का रहस्य

सनातन परम्परा में हर अंक के साथ दिव्य वस्तुएँ जुड़ीं हैं। आठ भी ऐसा ही अंक हैं और श्रीकृष्ण की गाथा में आठ अंक कितना महत्त्वपूर्ण है ? इसे जानने के लिए आगे पढ़ें...
।। डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

69 श्रीकृष्ण की चारित्रिक विशेषताएँ

श्रीकृष्ण की अलौकिक छवि की अवधारणा के बीच से हम उनके मानवता के 'रक्षक' वास्तव में 'महामानव' के स्वरूप पर विमर्श करें।
।। डॉ. आशुतोष आंगिरस

73 भारतीय सांस्कृतिक एकता के प्रतीक : कृष्ण

श्रीकृष्ण विश्व में आदर्श महानायक के रूप में स्थापित हैं। रासेश्वर, द्वारकाधीश, योगेश्वर, पूर्णावतार आदि विविध रूपों में श्रीकृष्ण अपने ही रंग में सबको रंगकर एकता के प्रतीक बन चुके हैं। ।। डॉ. सीमा मोरवाल

78 कृष्ण जन-जन में कण-कण में

श्रीकृष्ण का कर्म-संदेश कहीं न कहीं दूर होता जा रहा है। हमने उनके द्वारा उपदिष्ट कर्म को जप मान लिया है और उस व्यापकता से दूर होते जा रहे हैं।
।। नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

81 जित देखूँ तित कृष्ण

जिस रंग के चश्मे से हम देखेंगे, संसार वैसा ही दिखाई देगा। जैसे हम हैं, श्रीकृष्ण भी हमें वैसे दिखेंगे। कारण एक ही है और वह है, श्रीकृष्ण की व्यापकता।
।। डॉ. चित्रा अवस्थी

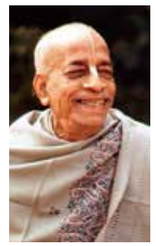

84 विशेष विभूति परिचय

इस बार ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी श्रील प्रभुपाद जी महाराज की जीवनी पर सुंदर लेख की प्रस्तुति, ISKCON जुहु, मुंबई के सौजन्य से।
।। चंद्रकांत विद्यार्थी

88 मेरे कृष्ण और मैं

रामपुर उत्तरप्रदेश की ग्रामीण संस्कृति में पले बढ़े एक शिक्षित व्यक्ति की कृष्ण से उसके संबंध की सुंदर अभिव्यक्ति पढ़िए इस लेख में।
।। डॉ. अब्दुल लतीफ

91 गीता दैनिक जीवन में

विषाद की पराकाष्ठा में जब सत्य को सहज और सरल भाव से कृष्ण को समर्पित कर दिया जाए तो विषाद भी योग प्रसाद बन जाता है। पढ़िए विषाद को योग कैसे बनाएँ!
।। पवन के. सेठी

◦ 95 कृष्ण प्रेमी ◦ 97 कृष्णकाव्य ◦ 99 समीक्षा ◦ 101 इस विशेषांक के चित्रकार ◦ 103 जिज्ञासा

देवकीपुत्र वासुदेव कृष्ण और महाभारत काल के कृष्ण की तिथि

श्रीकृष्ण कब हुए, यह इतिहासकारों के बीच मतान्तर का विषय रहा है। वर्तमान लेखक ने अनेक प्रमाणों के आधार पर सिद्ध किया है कि वस्तुत: श्रीकृष्ण के होने के दो समय हुए हैं– एक देवकी तथा वसुदेव के पुत्र कृष्ण का जन्म 25 मई 11153 ई.पू. हुआ तथा दूसरे महाभारत काल के कृष्ण 3223-3126 ई.पू. के आसपास हुए। लेखक का मत है कि पुराणों के अद्यतनकर्ता सूतों ने दोनों को एक मान लिया है।

प्राचीन भारतीय कैलेंड्रिक युग प्रणाली का विकास– वैदिक और उत्तर-वैदिक युग के पंचवर्षीय युग और बीस वर्षीय चतुर्युग से, रामायण युग के बाद के 4,32,0000 वर्षों के चतुर्युग तक ने महाभारत के बाद के युग के पुराण अद्यतनकर्ता सूतों के लिए एक बड़ी चुनौती पेश की थी। दुर्भाग्य से, महाभारत-पूर्व युग के पुराणों के मूल ग्रंथ और महाभारत युग के व्यास द्वारा संकलित पुराण आज मौजूद नहीं हैं। प्रतीत होता है, पुराणों और इतिहास (रामायण, महाभारत, योगवाशिष्ठ आदि) के उपलब्ध ग्रंथों को मौर्य काल से

> कालयवन की यह कथा स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि देवकीपुत्र कृष्ण राजा मान्धाता (11150 ईसा पूर्व) के पुत्र मुचुकुंद के समकालीन थे। पुराणों के अद्यतन-कर्ताओं ने गलती से यह मानना शुरू कर दिया कि मुचुकुंद एक चिरंजीवी थे।

गुप्त-गुप्त काल तक पुन: संकलित किया गया है। आवधिक पुनः संकलन का मुख्य उद्देश्य अधिक से अधिक प्राचीन उपाख्यानों (ऐतिहासिक किंवदंतियों) और देवों की पौराणिक कथाओं का दस्तावेजीकरण करना था और विभिन्न राजाओं की वंशावली कालक्रम को आज से संबंधित करना भी था। उपाख्यानों से संबंधित पुराणिक श्लोक व्यास द्वारा संकलित मूल पुराण ग्रंथों में आवधिक (अवधि से संबंधित) जोड़ थे, जबकि वंशावली से संबंधित श्लोक समय-समय पर अद्यतन (आज से संबंधित) किए गए थे।

नतीजतन, इतिहास ग्रंथों और पुराणों के अद्यतनकर्ताओं ने वंशावली और कालानुक्रमिक इतिहास की प्रस्तुति में कुछ गलतियाँ की थीं। ऐसी ही एक कालानुक्रमिक गलती देवकीपुत्र वासुदेव कृष्ण की तिथि-निर्धारण की है। उन्होंने गलती से महाभारत युग के देवकीपुत्र कृष्ण और कृष्ण को एक मान लिया, जिसके कारण निम्नलिखित कालानुक्रमिक विसंगतियाँ पैदा हुईं। मैंने निर्णायक रूप से स्थापित किया है कि देवकीपुत्र कृष्ण ऋग्वैदिक युग में रहते थे, लगभग 11153-11050 ईसा पूर्व, जबकि महाभारत युग के कृष्ण 3223-3126 ईसा पूर्व के आसपास रहते थे। आइए इन कालानुक्रमिक विसंगतियों पर चर्चा करें।

1. छान्दोग्य-उपनिषद में उल्लेख है कि देवकीपुत्र कृष्ण ऋषि घोर आंगिरस के शिष्य थे, जिन्होंने वैदिक संस्कृत में ऋग्वेद का एक सूक्त लिखा था। जाहिर है, घोर आंगिरस और देवकीपुत्र कृष्ण उत्तर-वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के विकास से पहले रहते थे। महाभारत काल के श्रीकृष्ण मुनि सांदीपनि के शिष्य थे। छान्दोग्य-उपनिषद बताते हैं:

"तद्धैतद् घोर आङ्गिरसः कृष्णाय देवकीपुत्रायोक्त्वोवाचापिपास एव स बभूव सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्येताक्षितमस्यच्युतमसि प्राणस शितमसीति तत्रैते द्वे ऋचौ भवतः।"

यानी ऋषि घोर अंगिरस ने देवकी के पुत्र कृष्ण को यह शिक्षा दी और इसने कृष्ण की किसी अन्य ज्ञान की प्यास बुझाई और कहा– 'जब कोई व्यक्ति मृत्यु के निकट आता है तो उसे इन तीन विचारों की शरण लेनी चाहिए– 'आप अविनाशी अक्ष हैं,' 'आप अपरिवर्तनीय हैं (अप्रच्युत),' और 'आप सूक्ष्म प्राण हैं।' इसके संबंध में दो ऋक्-मंत्र हैं।" (– छान्दोग्य-उपनिषद, 3.17.6.) ऋग्वेद के एक मंत्र के रचयिता घोर आंगिरस थे। (– ऋग्वेद : 3.36.10.)

अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः।
अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन्॥

यह मंत्र छांदस या वैदिक संस्कृत में लिखा गया है। इसलिए, घोर आंगिरस और उनके शिष्य देवकीपुत्र कृष्ण महाभारत युग में नहीं बल्कि ऋग्वैदिक युग में रहते थे।

2. कालिय-मर्दन की कथा हमें बताती है कि कृष्ण कालिय नाग के समकालीन थे। कालिय कद्रू और ऋषि कश्यप के नाग वंश के वंशज थे। गरुड़ विनता और ऋषि कश्यप प्रजापति के वंशज थे। बेशक, न तो गरुड़ गिद्ध थे और न ही नाग नाग थे। वे चचेरे भाई थे। गरुड़ हमेशा नागों के साथ संघर्ष में थे। कालिय नाग को अपने पैतृक स्थान रमणक द्वीप (शायद, यमुना और चर्मण्वती नदियों के बीच का स्थान) छोड़ने के लिए मजबूर किया गया था और गरुड़ों के साथ संघर्ष से बचने के लिए उन्होंने कालिंदी ह्रद के पास एक जगह में शरण ली थी। ऋषि सौभरि भी कालिंदी ह्रद के पास निवास कर रहे थे। उन्होंने गरुड़ को कालिंदी ह्रद में प्रवेश न करने की चेतावनी दी। जाहिर है, कालिय नाग और गरुड़ ऋषि सौभरि के समकालीन थे जिन्होंने इक्ष्वाकु राजा मान्धाता (11150 ईसा पूर्व) की पचास बेटियों से शादी की थी। चूँकि कालिय नाग ने कालिंदी ह्रद के लोगों को परेशान करना शुरू कर दिया था, कृष्ण ने उन्हें एक सबक सिखाया और उन्हें कालिंदी ह्रद को छोड़कर रमणक द्वीप वापस जाने के लिए कहा। पुराणों के अद्यतनकर्ताओं ने कालिय नाग को एक विषैला नाग मानकर पौराणिक कथा का वर्णन किया। कालानुक्रमिक रूप से, देवकीपुत्र कृष्ण और कालिय नाग ऋषि सौभरि के जीवनकाल के दौरान रहते थे।

3. गर्ग संहिता और ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार पूतना विरोचन के पुत्र राक्षस राजा बलि की पुत्री थी। वामन ने राजा बलि को अपना राज्य देवों को सौंपने के लिए विवश किया। संभवत: असुर राजा कंस के सेनापति बने। पूतना ने बचपन में कृष्ण को मारने की कोशिश की थी। अघासुर, बकासुर और त्रिंशव्रत पूतना के भाई थे। कृष्ण का समकालीन शकटासुर हिरण्याक्ष के पुत्र उत्कच का वंशज था। कृष्ण के बड़े भाई बलदेव या बलभद्र ने प्रलम्ब नाम के एक असुर का वध किया था। जाहिर है, असुर राजा बलि के बेटे और बेटियाँ कृष्ण के समकालीन थे। रामायण युग से पहले राजा बलि रहते थे। चूँकि पुराण अद्यतनकर्ताओं ने देवकीपुत्र कृष्ण को महाभारत युग का समकालीन मान लिया था, इसलिए उनके पास

यह स्वीकार करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं था कि राजा बलि एक चिरंजीवी थे और महाभारत युग तक जीवित रहे। वास्तव में, महाभारत युग के दौरान कोई असुर या राक्षस नहीं थे।

4. देवकीपुत्र कृष्ण के समकालीन नरकासुर हिरण्याक्ष के वंशज थे। रामायण नरकासुर की कथा को संदर्भित करता है, जिसे विष्णु या कृष्ण द्वारा मारा गया था। इसलिए, देवकीपुत्र कृष्ण रामायण युग से पहले रहते थे।

5. कपि सम्प्रदाय के द्विवार्षिक नरकासुर के मित्र थे। नरकासुर की मृत्यु का बदला लेने के लिए द्विविद ने आनर्त राज्य के लोगों को परेशान करना शुरू कर दिया। उसने कृष्ण का अपहरण करने का प्रयास किया होगा। अंत में बलदेव ने द्विविद का वध किया। दिलचस्प बात यह है कि रावण के खिलाफ युद्ध के दौरान द्विविद और उनके जुड़वां भाई मैन्द ने श्रीराम की मदद की थी।

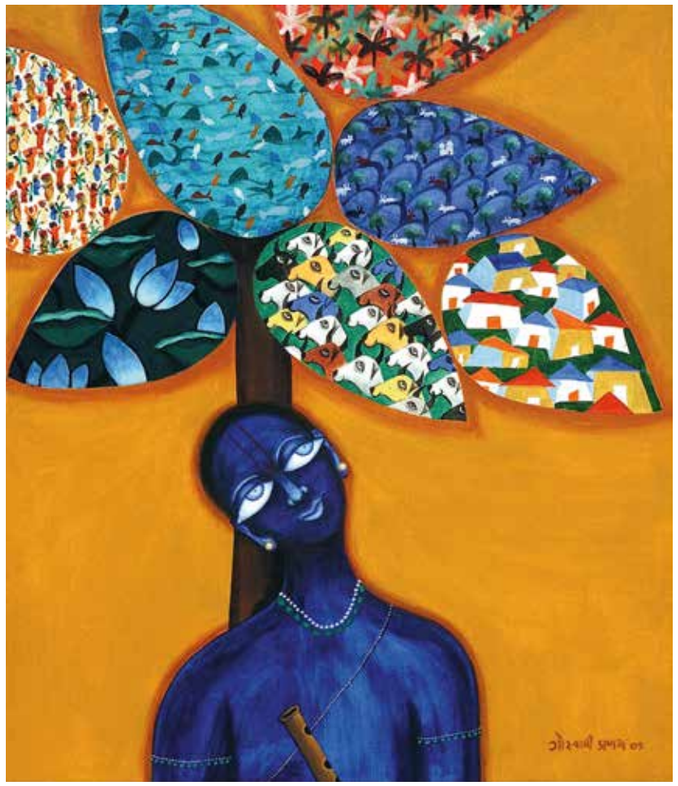

6. हरिवंश पुराण के अनुसार, कालयवन ऋषि गार्ग्य के श्याल (जीजा) और अप्सरा गोपालि के पुत्र थे। कालयवन यवनों का राजा बना और उसने मथुरा पर आक्रमण किया। कृष्ण मथुरा छोड़कर द्वारका की ओर चल पड़े। वासुदेव कृष्ण के बाद, कालयवन ने रैवतक पहाड़ियों (गिरनार) में एक गुफा में प्रवेश किया और मुचुकुंद द्वारा मारा गया। कालयवन की यह कथा स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि देवकीपुत्र कृष्ण राजा मान्धाता (11150 ईसा पूर्व) के पुत्र मुचुकुंद के समकालीन थे। पुराणों के अद्यतनकर्ताओं ने गलती से यह मानना शुरू कर दिया कि मुचुकुंद एक चिरंजीवी थे।

7. इक्ष्वाकु राजा नृग की कथा हमें बताती है कि कृष्ण भी राजा नृग के समकालीन थे। दिलचस्प बात यह है कि श्रीराम प्राचीन इक्ष्वाकु राजा नृग की कहानी को रामायण के उत्तरकांड (– रामायण : उत्तरकाण्ड, 53वाँ सर्ग) में लक्ष्मण से जोड़ते हैं। श्रीराम भी वासुदेव कृष्ण को संदर्भित करते हैं। महाभारत में देवकीपुत्र कृष्ण और राजा नृग की कहानी का भी वर्णन है।

अथैनाम् अब्रवीद् असौ ननु देवकीपुत्रेणापि
कृष्णेन नरके मज्जमानो राजर्षिर् नृगस्तस्मात् कृच्छ्रात्
समुद्धृत्य पुनः स्वर्गं प्रतिपादितेति।

(– महाभारत : 3.191)

महाभारत काल में नृग नाम का कोई इक्ष्वाकु राजा नहीं था। वास्तव में, राजा नृग राजा मान्धाता के समकालीन थे। यह स्पष्ट है कि देवकीपुत्र कृष्ण रामायण युग से पहले फले-फूले।

8. देवकीपुत्र कृष्ण ने राजा सत्रजित् की पुत्री सत्यभामा से विवाह किया। स्यमंतक मणि की कथा हमें बताती है कि जांबवान ने सत्रजित् के भाई प्रसेन को मार डाला और स्यमंतक मणि को चुरा लिया था। कृष्ण ने जांबवान को पराजित किया और उसकी पुत्री जाम्बवती से विवाह किया। यह जांबवान रामायण काल के जांबवान के पूर्वज थे। यास्क के निरुक्त में अक्रूर और स्यमंतक माणि का उल्लेख है। महाभारत यास्क को संदर्भित करता है। जाहिर है, यास्क ने महाभारत युग से पहले निरुक्त लिखा था। ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मण भी राजा सत्रजित् और उनके पुत्र शतानीक का उल्लेख करते हैं। याज्ञवल्क्य और महिदास ऐतरेय उत्तर वैदिक संस्कृत के युग के दौरान और रामायण युग से पहले रहते थे।

9. महाभारत, हरिवंश पुराण, क्षेमेंद्र के भारतमंजरी, सर्वसेन के हरिविजय में वर्णित पारिजातहरण की ऐतिहासिक कथा (– महाभारत : द्रोण पर्व, 10.22.) बताते हैं कि कृष्ण ने इंद्र की राजधानी अमरावती से पारिजात के पेड़ को जबरन हटा दिया और इसे द्वारका के पास ले गए और उसे सत्यभामा के प्रांगण में लगा दिया। महाभारत काल में कोई इंद्र नहीं था।

10. कृष्ण और जाम्बवती के पुत्र द्रविड़, द्रविड़ों के पूर्वज थे। द्रविड़ राजा महाभारत युग से पहले ही तमिलनाडु में स्थापित हो चुके थे। सहदेव ने युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के दौरान द्रविड़ों को अपने अधीन कर लिया। महाभारत युद्ध में द्रविड़ राजाओं ने पांडवों का समर्थन किया था।

11. प्रद्युम्न कृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र थे। एक बार असुर शम्बर ने प्रद्युम्न का अपहरण कर लिया। असुर राजा शम्बर और उनके वंशज ऋग्वैदिक काल में रहते थे। रामायण में उल्लेख है कि इंद्र ने शम्बर का वध किया था। महाभारत काल में शम्बर नाम का कोई असुर नहीं था।

12. कृष्ण और प्रद्युम्न ने राक्षस निकुंभ से युद्ध किया और उसे मार डाला। निकुंभ हिरण्यकशिपु के वंशज थे। सुन्द और उपसुन्द निकुंभ के पुत्र थे। रामायण में सुन्द और उपसुन्द का उल्लेख है। जाहिर है, ऋग्वैदिक काल में प्रद्युम्न फले -फूले।

13. अनिरुद्ध प्रद्युम्न के पुत्र थे। उन्होंने बाणासुर की पुत्री और राजा बलि की पोती उषा से विवाह किया। जाहिर है, अनिरुद्ध ऋग्वैदिक काल में रहते थे।

14. ककुद्मि और बलदेव की कथा से संकेत मिलता है कि ककुद्मि की बेटी रेवती ने सत्ताईस युगों के बाद ज्योतिर्मती के रूप में पुनर्जन्म लिया और बलराम से विवाह किया। ऐसा लगता है कि रेवती का विवाह वैवस्वत मन्वन्तर की शुरुआत में देवकीपुत्र कृष्ण के बड़े भाई बलदेव से हुआ था, जबकि ज्योतिर्मती का विवाह महाभारत युग के कृष्ण के भाई बलराम द्वितीय से हुआ था।

15. ऋषि सरद्वान् ऋषि गौतम और अहल्या के प्रपौत्र थे। वह राजा प्रताप और उनके पुत्र शांतनु के समकालीन थे। उनके पुत्र कृपाचार्य और पुत्री कृपी थीं, जिन्होंने द्रोण से विवाह किया था। अश्वत्थामा द्रोण और कृपी के पुत्र थे। चूँकि कृपाचार्य और अश्वत्थामा वैवस्वत मन्वन्तर की शुरुआत में रहते थे, इसलिए उन्हें चिरंजीवी भी माना जाता था।

16. मेगास्थनीज दो शहरों की भूमि, अर्थात् मेथोरा (मथुरा) और क्लेसोबोरा (कल्पपुर या कल्पिपुर) की भूमि को संदर्भित करता है। वह भारतीय कृष्ण और यूनानी हेराक्लीज़ को एक समान मानते हैं। उन्होंने उल्लेख किया है कि सिकंदर से 6042 साल पहले भारतीय हेराक्लीज़ रहते थे। जाहिर है, मेगस्थनीज पूर्व-रामायण युग के देवकीपुत्र कृष्ण को संदर्भित करता है।

17. दिलचस्प बात यह है कि ऋषि वशिष्ठ देवकीपुत्र कृष्ण की कथा को पद्म-पुराण में दर्ज श्रीराम के पूर्वज इक्ष्वाकु राजा दिलीप से जोड़ते हैं। (– पद्म पुराण : 4.13.8-19)

18. पाँचवें तमिल वैष्णव संत नम्माळवार (3173-3172 ईसा पूर्व में पैदा हुए) और आण्डाळ (3075 ईसा पूर्व में पैदा हुए) ने भगवान् श्रीकृष्ण को समर्पित कविताएँ लिखीं। आण्डाळ ने दो कविताओं की रचना की, जिसमें उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति अपने प्रेम का इजहार किया। उसने खुद को श्रीकृष्ण की गोपी के रूप में कल्पना की। जाहिर है, महाभारत युग से पहले भगवान् श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार के रूप में अच्छी तरह से स्थापित थे। महाभारत में कृष्ण के विष्णु के अवतार के रूप में कई संदर्भ हैं। उद्योग पर्व कृष्ण को नारायण के रूप में संदर्भित करता है। (– महाभारत : उद्योग पर्व, अध्याय 48.)

एष नारायणः कृष्णः फल्गुनस्तु नरः स्मृतः।
नारायणो नरश्चैव सत्त्वम् एकं द्विधाकृतम्॥
एतौ हि कर्मणा लोकानश्नुवातेऽक्षयान् ध्रुवान्।
तत्र तत्रैव जायेते युद्धकाले पुनः पुनः॥
तस्मात् कर्मैव कर्तव्यमिति होवाच नारदः।
एतद्धि सर्वम् आचष्ट वृष्णिचक्रस्य वेदवित्॥
शङ्खचक्रगदाहस्तं यदा द्रक्ष्यसि केशवम्।

प्रतीत होता है, नारायण देवकीपुत्र कृष्ण का दूसरा नाम था। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के रचयिता ऋषि नारायण कोई और नहीं; बल्कि वासुदेव कृष्ण थे। फाल्गुन ऋग्वैदिक युग के अर्जुन का नाम था। इसलिए, महाभारत फाल्गुन को नर के रूप में संदर्भित करता है।

19. महानारायण उपनिषद रामायण युग से पहले वैदिक संस्कृत में लिखा गया था। यह वासुदेव, नारायण और विष्णु को संदर्भित करता है।

20. महाभारत के अनुसार, युधिष्ठिर ने भीष्म से शुक्राचार्य की प्राचीन कथा सुनाने का अनुरोध किया। यदि शुक्र महाभारत काल के व्यास के पुत्र थे, तो भीष्म ने प्राचीन काल के शुक्राचार्य की स्तुति कैसे की थी?

21. अध्यात्म-रामायण के युद्धकाण्ड में शुक और रावण के बीच एक संवाद का संबंध है। महाभारत युग का शुक रावण का समकालीन कैसे हो सकता है?

22. अद्भुत रामायण का सातवाँ सर्ग विष्णु के अवतार कृष्ण की कहानी से संबंधित है। निस्संदेह, अद्भुत रामायण इंगित करता है कि कृष्ण रामायण युग से पहले फले-फूले थे।

यह स्पष्ट है कि देवकीपुत्र वासुदेव कृष्ण ऋग्वैदिक युग में 11153-11050 ईसा पूर्व के आसपास रहते थे और घोर आंगिरस के शिष्य थे, जबकि वासुदेव कृष्ण के वंशज श्रीकृष्ण, महाभारत युग में 3223-3126 ईसा पूर्व के आसपास रहते थे।

23. ऋषि वशिष्ठ के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए, ऋषि विश्वामित्र कहते हैं कि श्रीराम वास्तव में वासुदेव के अवतार हैं, जैसा कि योग वाशिष्ठ में उल्लेख है। स्पष्ट है कि वासुदेव कृष्ण को रामायण युग से पहले का होना चाहिए।

24. जैन आचार्य हेमचंद्र इंगित करते हैं कि कृष्ण के रूप में विष्णु का अवतार राम से पहले था।

25. भद्रबाहु के कल्पसूत्र में चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव का उल्लेख है। बाद के जैन-ग्रंथों से संकेत मिलता है कि राम बलदेवों में से एक थे।

26. महाभारत के जैन संस्करण में कौरवों और पांडवों और कृष्ण और बलराम के वंशजों की कहानी का वर्णन है। दिलचस्प बात यह है कि जैन महाभारत इंगित करता है कि कृष्ण ने जरासंध के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि जरासंध ने महाभारत युद्ध से कम से कम बीस साल पहले मथुरा पर आक्रमण किया था। उन्हें कश्मीर के राजा गोनन्द प्रथम का समर्थन प्राप्त था।

27. गुरु गोविंद सिंह ने चौबीस अवतारों की सूची दी है। उनके अनुसार, बलराम ग्यारहवें अवतार थे, राम बीसवें और कृष्ण इक्कीसवें अवतार थे। राम से नौ अवतार पहले बलराम को कैसे रखा जा सकता है? प्रतीत होता है, बलराम और कृष्ण रामायण युग से पहले अवतरित हुए थे।

यह स्पष्ट है कि देवकीपुत्र वासुदेव कृष्ण ऋग्वैदिक युग में 11153-11050 ईसा पूर्व के आसपास रहते थे और घोर आंगिरस के शिष्य थे, जबकि वासुदेव कृष्ण के वंशज श्रीकृष्ण, महाभारत युग में 3223-3126 ईसा पूर्व के आसपास रहते थे।

द्वारवती (द्वारका) के जलमग्न होने की तिथि

आधुनिक इतिहासकारों ने निष्कर्ष निकाला है कि भारतीय साहित्य में द्वारवती या द्वारका के खोए हुए शहर के संदर्भ और ग्रीक साहित्य में अटलांटिस के खोए हुए शहर के संदर्भ पौराणिक हैं। लेकिन भारतीय और विश्व कालक्रम में नए शोध स्पष्ट रूप से संकेत देते हैं कि दुनिया के प्राचीन राष्ट्रों का सभ्यतागत इतिहास यकीनन होलोसीन की शुरुआत में शुरू हुआ था।

देवकीपुत्र कृष्ण ने द्वारवती शहर की स्थापना की और विश्वकर्मा सिविल इंजीनियर थे जिन्होंने शहर की योजना बनाई थी। द्वारवती नगरी उसी स्थान पर बनी थी जहाँ कुशस्थली नगरी थी। कुशस्थली सौराष्ट्र की प्रारंभिक राजधानी थी। राजा रैवत मनु (12500 ईसा पूर्व) ने इस शहर की स्थापना रैवतक पहाड़ी या गिरनार के पास की थी। हरिवंश पुराण से संबंधित है कि श्रीकृष्ण ने समुद्र द्वारा छोड़ी गई भूमि पर द्वारवती शहर का निर्माण किया था। संभवतः, कुशस्थली लगभग 12000-11800 ईसा पूर्व मेल्टवाटर पल्स 1ए के दौरान समुद्र में डूबा हुआ था, लेकिन बाद में फिर से सामने आया।

हरिवंश के अनुसार, द्वारवती गिरनार (रैवतक) पहाड़ी के निकट स्थित था।

बभौ रैवतकः शैलो रम्यसानुगुहाजिरः ।

(– हरिवंश : 2.98.15)

एक नदी भी शहर में बह रही थी (महानदी द्वारवतीं पञ्चाशद्भिर्म-हामुखैः। प्रविष्टा पुण्यसलिला भावयन्ती समन्ततः). द्वारवती नगर की लंबाई बारह योजन और चौड़ाई आठ योजन थी (अष्टयोजनविस्तीर्णा-मचलां द्वादशायताम् द्विगुणोपनिवेशां च ददर्श द्वारकां पुरीम्)।

यह ध्यान दिया जा सकता है कि वैदिक, उत्तर-वैदिक और रामायण युग के दौरान योजन 165-169 मी. के बराबर था। बाद में महाभारत काल में योजना 13 कि.मी. के बराबर हो गई। इस प्रकार, द्वारका शहर की लंबाई 2 कि.मी. और चौड़ाई 1.5 कि.मी. थी।

जब देवकीपुत्र कृष्ण की मृत्यु हुई, लगभग 11000 ईसा पूर्व एक शिकारी के बाण के आगे झुकते हुए, जाम्बवती के पुत्र द्रविड़ द्वारका में उनके उत्तराधिकारी हो सकते थे; क्योंकि जाम्बवती के बड़े पुत्र साम्ब को श्रीकृष्ण ने कुष्ठरोग का शाप दिया था। साम्ब को बारह वर्ष तपस्या करनी पड़ी। द्वारका में प्रद्युम्न मारा गया और उसके पुत्र अनिरुद्ध ने मथुरा में शासन किया। जाम्बवती के पुत्र द्रविड़ प्रद्युम्न की मृत्यु के बाद द्वारका के राजा बने। संगम युग के तमिल कवि कपिलर् ने अपनी कविताओं (पुराणनुरु के श्लोक 201 और 202) में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि वेलिर राजा इरुंकोवेल के पूर्वज 'तुवरई' के गढ़वाले शहर के शासक थे। नचिनार्ककिनियार, 'तोल्काप्पियम' के एक टीकाकार, 'तुवरई' या 'तुवरापति' शहर से तमिलनाडु में वेलिर राजाओं के प्रवास को रिकॉर्ड करते हैं। वह इंगित करता है कि वेलिर्स ऋषि अकट्टियानार (अर्थात अगस्त्य) के नेतृत्व में तमिलनाडु आए थे और वे नेतुमुतियान्नळ (यानी कृष्ण) के वंश के थे। एक तमिल शिलालेख (पुदुकोट्टई राज्य शिलालेख संख्या 120) में भी "तुवरई" शहर से वेळिर राजाओं के प्रवास का उल्लेख है। निस्संदेह, 'तुवरई' या 'तुवरापति' देवकीपुत्र कृष्ण द्वारा स्थापित द्वारवती या द्वारका का शहर था।

दिलचस्प बात यह है कि वेलिर् राजा सत्यपुत्र अथियमन नेदुमन अंची का शिलालेख तमिलनाडु के विल्लुपुरम् जिले के जंबाई गाँव के जंबाईमलाई नामक पहाड़ी पर पाया जाता है। आमतौर पर यह तर्क दिया जाता है कि गाँव का नाम जम्बूनाथेश्वर मंदिर के नाम पर पड़ा है, लेकिन इस शिव मंदिर का नाम जम्बुनाथ के नाम पर रखा गया है। जाहिर है, जम्बुनाथ कोई और नहीं बल्कि जाम्बवती के पिता जाम्बवान थे। चूँकि वेलिर या सत्यपुत्र राजा जाम्बवती के वंशज थे, जम्बाई गाँव के शिव मंदिर का नाम जम्बुनाथ या जाम्बवान के नाम पर रखा गया था। इस प्रकार, हम निर्णायक रूप से यह स्थापित कर सकते हैं कि वेलिर् राजाओं के पूर्वज द्वारवती शहर से चले गए थे और वे देवकीपुत्र कृष्ण और जाम्बवती के वंशज थे।

भागवत पुराण में कहा गया है कि देवकीपुत्र कृष्ण ने राजा जांबवान की पुत्री जाम्बवती से विवाह किया था। जाम्बवती सांब, सुमित्रा, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजया, चित्रकेतु, वसुमन, द्रविड़ और क्रतु की माता थी। इस प्रकार, द्रविड़ कृष्ण प्रथम और जाम्बवती के पुत्र थे। ये वेलिर् राजा, या द्रविड़ के वंशज, दक्षिण भारत में चले गए और टोंडईमंडलम और चोल साम्राज्य के बीच के क्षेत्र में अपना राज्य स्थापित किया। मनुस्मृति में उल्लेख है कि द्रविड़ वृत्य क्षत्रिय थे क्योंकि द्रविड़ की माता जाम्बवती संभवतः एक गैर-क्षत्रिय राजकुमारी थीं।

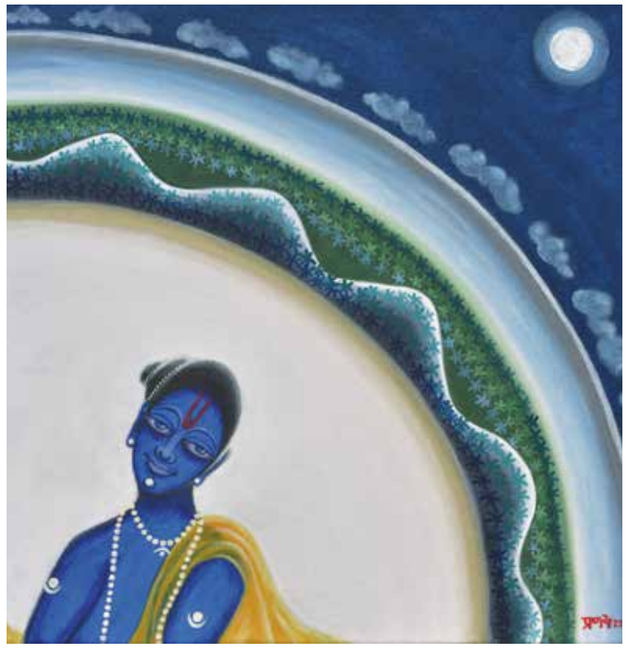

समुद्र विज्ञान संबंधी अध्ययनों के अनुसार, लगभग 10000-9500 साल पहले 500 वर्षों में समुद्र का स्तर अचानक 28 मीटर बढ़ गया था। 10000-9400 ईसा पूर्व के इस त्वरित समुद्र स्तर को 'मेल्टवाटर पल्स 1बी' नाम दिया गया है।

कपिलर् के अनुसार, अड़तालीस पीढ़ियों या प्राचीन इरुंको राजाओं या प्राचीन वेलिर राजाओं के अड़तालिस पूर्वजों ने द्वारवती में शासन किया था। उन्होंने 'सेटिरुनको' की उपाधि का उल्लेख किया, जिसका अर्थ है 'ज्येषा इरुंको' या इरुंकोवेल प्रथम। कई वेलिर् राजा थे जिनके पास 'इरुंकोवेल' की उपाधि थी। कुछ तमिल शिलालेखों में वेलिर् राजाओं को इरुंको मुत्तरैसर, यानी प्राचीन इरुंको राजाओं के रूप में संदर्भित किया गया है। इसलिए, कपिलर् पहले इरुंकोवेल को 'सेटिरुनको' के रूप में संदर्भित करता है। संभवतः, इरुंकोवेल प्रथम उनतालिसवें वेलिर् राजा थे जिन्होंने द्वारवती पर शासन किया था।

प्रतीत होता है, राजा द्रविड़ के उनतालीस वंशजों ने द्वारवती में लगभग 1650 वर्षों तक राज्य किया, 11050 ईसा पूर्व से 9400 ईसा पूर्व तक, प्रत्येक राजा के लिए 33 वर्षों के औसत शासन को देखते हुए। उनतालीसवें राजा इरुंकोवेल प्रथम के शासनकाल के दौरान द्वारवती 9400-9300 ईसा पूर्व के आसपास समुद्र में डूबा हुआ था।

समुद्र विज्ञान संबंधी अध्ययनों के अनुसार, लगभग 10000-9500 साल पहले 500 वर्षों में समुद्र का स्तर अचानक 28 मीटर बढ़ गया था। 10000-9400 ईसा पूर्व के इस त्वरित समुद्र स्तर को 'मेल्टवाटर पल्स 1बी' नाम दिया गया है। कई यादव परिवारों को पूर्व और दक्षिण की ओर पलायन करना पड़ा। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय खगोलविदों ने 9400-9300 ईसा पूर्व के आसपास कई बार 'रोहिणी शकट भेद' की घटना देखी (जब मंगल या शनि रोहिणी शकट, यानी वृष नक्षत्र के ताराओं की त्रिकोणीय आकृति) से गुजरते हैं। संभवतः, द्वारवती शहर लगभग 9400-9300 ईसा पूर्व समुद्र में डूबा हुआ था। शायद यही कारण है कि ऋषि गर्ग के ज्योतिष शास्त्र ने 'रोहिणी शकट भेद' को एक घातक आपदा से जोड़ा था। लाटदेव (3160-3080 ईसा पूर्व) भी अपने 'सूर्य-सिद्धांत' में 'रोहिणी शकट

भेद' का उल्लेख करते हैं; क्योंकि महाभारत युग के दौरान शनि ने 'ई-टौरी' को गुप्त रखा था।

द्वारवती के प्राचीन शहर की पहचान

पौराणिक कथाओं से पता चलता है कि कंस की हत्या के बाद देवकीपुत्र कृष्ण ने अपनी राजधानी मथुरा से द्वारवती स्थानांतरित कर दी थी। जरासंध प्रथम और कालयवन के आक्रमणों ने भी कृष्ण को द्वारवती जाने के लिए मजबूर किया

कृष्णोऽपि कालयवनं ज्ञात्वा केशिनिषूदनः।
जरासंधभयाच्चैव पुरीं द्वारवतीं ययौ।।

(– *हरिवंश : 2.56.35*)

हरिवंश के अनुसार, श्रीकृष्ण ने प्राचीन शहर कुस्थस्थली के क्षेत्र का चयन किया था जिसे समुद्र से पुनः प्राप्त किया गया था और विश्वकर्मा से पूरे शहर की योजना बनाने और डिजाइन करने का अनुरोध किया था।

देव यास्यामि नगरीं रैवतस्य कुशस्थलीम्।

(– *हरिवंश : 2.55.7.*)

वासार्थमीक्षितुं भूमिं तव देव कुशस्थलीम्।,
तस्मिन्नेव ततः काले शिल्पाचार्यो महामतिः।
विश्वकर्मा सुरश्रेष्ठः कृष्णस्य प्रमुखे स्थितः॥

(– *हरिवंश : 2.58.22*)

रैवत मनु (12500 ईसा पूर्व) ने कुस्थस्थली शहर का निर्माण किया। यह शहर लगभग 12000 ईसा पूर्व 'मेल्टवाटर पल्स 1ए' की अवधि के दौरान समुद्र में डूबा हुआ था। रैवत मनु के वंशजों को अपनी राजधानी को कुशस्थली से प्रभास पाटन-कोडिनर क्षेत्र में स्थानांतरित करना पड़ा। राजा काकुड़ा या काकुदमी, रैवत मनु के अंतिम ज्ञात वंशज, रैवतक पहाड़ियों या सौराष्ट्र के क्षेत्र के शासक थे।

किमर्थं च परित्यज्य मथुरां मधुसूदनः।
मध्यदेशस्य ककुदं धाम लक्ष्म्याश्च केवलम्॥

(– *हरिवंश : 2.55.16*)

उनकी पुत्री रेवती का विवाह देवकीपुत्र कृष्ण के बड़े भाई बलदेव से हुआ था। प्रतीत होता है कि कुशस्थली का क्षेत्र 11200 ईसा पूर्व के एक बड़े भूकंप के कारण समुद्र से फिर से उभर आया था। देवकीपुत्र कृष्ण ने 11100 ईसा पूर्व के आसपास धँसा शहर कुशस्थली के पास पहाड़ियों पर द्वारका शहर का निर्माण किया था।

हरिवंश के अनुसार, रैवतक पहाड़ी (गिरनार)

द्वारवती के पूर्व में, दक्षिण में पंचवर्ण, पश्चिम में इंद्रकेतु-प्रतिका (इंद्रकेतु जैसी पहाड़ी जो शायद एक द्वीप पर स्थित थी)और वेणुमान मंदाराद्री-प्रतिका (बाँस की एक पहाड़ी) थी। उत्तर में मंदरा पहाड़ी जैसे पेड़ जो शायद पोरबंदर की बरदा पहाड़ी थी)

वभौ रैवतकः शैलो रम्यसानुगुहाजिरः।
पूर्वस्यां दिशि लक्ष्मीवान् मणिकाञ्चनतोरणः॥
दक्षिणस्यां लतावेष्टः पञ्चवर्णो विराजते।
इन्द्रकेतुप्रतीकाशः पश्चिमां दिशमाश्रितः॥
सुकक्षो राजतः शैलश्चित्रपुष्पमहावनः॥
उत्तरां दिशमत्यर्थं विभूषयति वेणुमान्।
मन्दराद्रिप्रतीकाशः पाण्डुरः पार्थिवर्षभ॥

(– *हरिवंश : 2.98.15-17.*)

महानदी नाम की एक नदी भी द्वारवती शहर से होकर बह रही थी

महानदी द्वारवतीं पञ्चाशद्भिर्महामुखैः।
प्रविष्टा पुण्यसलिला भावयन्ती समन्ततः।।

(– *हरिवंश : 2.98.24.*)

देवकीपुत्र कृष्ण की आकस्मिक मृत्यु के बाद, शायद, कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न सिंहासन पर बैठे, लेकिन यादवों के बीच एक आंतरिक संघर्ष में द्वारवती में उनकी मृत्यु हो गई। प्रतीत होता है, प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध को मथुरा जाना पड़ा। उसका पुत्र वज्र, या वज्रनाभ, उसका उत्तराधिकारी बना और इंद्रप्रस्थ का राजा बना। तमिल सूत्रों के अनुसार, द्वारवती में उनतालीस वेलिर राजा या द्रविड़ राजा राज्य करते

> देवकीपुत्र कृष्ण ने कुशस्थली शहर की पुनः प्राप्त भूमि पर 11100 ईसा पूर्व के आसपास द्वारवती शहर का निर्माण किया था और यह 9400-9300 ईसा पूर्व के आसपास जलमग्न हो गया था। द्वारवती का यह धँसा शहर वास्तव में खंभात की खाड़ी में पाया जाने वाला दक्षिणी शहर था।

थे। द्रविड़ या वेलिर जाम्बवती के पुत्र द्रविड़ के वंशज थे। ऐसा प्रतीत होता है कि 9400-9300 ईसा पूर्व (जब रोहिणी शकट भेद की खगोलीय घटना देखी गई थी) के आसपास, मेल्टवाटर पल्स 1बी के अंत में द्वारवती में बाढ़ आने लगी थी। द्वारवती के कई यादव परिवारों को देवकीपुत्र कृष्ण द्वारा निर्मित नगर छोड़ना पड़ा। उनमें से कुछ दक्षिण भारत चले गए।

पौराणिक संदर्भ स्पष्ट रूप से गिरनार पहाड़ियों के निकट द्वारवती के स्थान का संकेत देते हैं। जैन सूत्र भी गिरनार पहाड़ियों के निकट द्वारवती शहर की उपस्थिति को स्वीकार करते हैं। हाल ही में, 2001 में खंभात की खाड़ी में एक जलमग्न शहर की खोज की गई है। खंभात क्षेत्र को प्राचीन काल में स्थाभतीर्थ के रूप में जाना जाता था।

तत्कृत्वा सानुमान्यैतान्स्तंभतीर्थमुपागता।

(– *स्कंद पुराण : महेश्वर कौमारिका खंड, 39.166*)

समुद्री पुरातत्त्वविदों को इस जलमग्न शहर में लकड़ी का एक टुकड़ा मिला और यह कार्बन डेटिंग के आधार पर 7545-7490 ईसा पूर्व का था। निस्संदेह, खंभात की खाड़ी में यह डूबा हुआ शहर मूल द्वारवती, या द्वारका था, जिसकी स्थापना श्रीकृष्ण ने की थी। संभवतः मेल्टवाटर पल्स 1 बी के अंत में, द्वारवती शहर 9400-9300 ईसा पूर्व के आसपास समुद्र से भर गया था। ऐसा प्रतीत होता है कि द्वारवती शहर के क्षेत्र को पूरी तरह से डूबने में कम से कम 1500 साल लग गए। इस प्रकार, खंभात की खाड़ी में डूबे हुए शहर के क्षेत्र में पाया जाने वाला लकड़ी का टुकड़ा लगभग 8000-7500 ईसा पूर्व जलमग्न हो गया था।

यह सर्वविदित है कि मेल्टवाटर पल्स 1ए (12000 ईसा पूर्व) की घटना से पहले गुजरात तट का समुद्र स्तर 100 मीटर नीचे था। हालांकि द्वारवती के निचले इलाकों में लगभग 9400-9300 ईसा पूर्व बाढ़ आई थी, लेकिन यह धीरे-धीरे 9400-7500 ईसा पूर्व की अवधि के दौरान जलमग्न हो गया। 9500-7500 ईसा पूर्व के आसपास 2000 वर्षों तक समुद्र का स्तर लगभग अपरिवर्तित रहा। यही कारण हो सकता है कि लकड़ी का एक टुकड़ा लगभग 7500 ईसा पूर्व कार्बन दिनांकित है।

खंभात की खाड़ी में दो डूबे हुए टाउनशिप पर शोध से पता चलता है कि दक्षिणी टाउनशिप धीरे-धीरे 9400-7500 ईसा पूर्व के आसपास जलमग्न हो गई थी और उत्तरी टाउनशिप 1500-1000 ईसा पूर्व के आसपास जलमग्न हो गई थी। जाहिर है, दक्षिणी बस्ती कुशस्थली और द्वारवती का प्राचीन शहर था। इस क्षेत्र में 30000 ईसा पूर्व से मनुष्यों की उपस्थिति थी। रैवत मनु ने 12500 ईसा पूर्व के आसपास कुशस्थली शहर का निर्माण किया, जो लगभग 12000 ईसा पूर्व जलमग्न हो गया था। सबसे अधिक संभावना है, कुशस्थली का क्षेत्र और सूर्पारक का क्षेत्र (थाना जिले के एक शहर सोपारा के पास) 11200 ईसा पूर्व के आसपास एक बड़े भूकंप में फिर से उभर आया। पौराणिक किंवदंतियों के अनुसार है कि परशुराम (11220-11120 ईसा पूर्व) ने सूर्पारक के क्षेत्र को पुनः प्राप्त किया और देवकीपुत्र कृष्ण (11153-11050 ईसा पूर्व) ने समुद्र से कुश स्थली के क्षेत्र को पुनः प्राप्त किया। उसी भूकंप ने बारामूला दर्रे को खोल दिया होगा, जिसके परिणामस्वरूप कश्मीर घाटी की हिमनद झील से पानी का भारी बहिर्वाह हुआ। इसके कारण सिंध और गुजरात में भीषण बाढ़ आई, जो वैवस्वत मनु के समय की महान बाढ़ की कथा के अलावा और कुछ नहीं है। प्रतीत होता है, इस बड़े पैमाने पर भूकंप ने सुनामी का कारण बना दिया था जिसे समुद्र मंथन के रूप में पौराणिक कथाओं के रूप में वर्णित किया गया था।

देवकीपुत्र कृष्ण ने कुशस्थली शहर की पुनः प्राप्त भूमि पर 11100 ईसा पूर्व के आसपास द्वारवती शहर का निर्माण किया था और यह 9400-9300 ईसा पूर्व के आसपास जलमग्न हो गया था। द्वारवती का यह धँसा शहर वास्तव में खंभात की खाड़ी में पाया जाने वाला दक्षिणी शहर था। सभी संभावनाओं में, द्वारवती शहर के यादवों ने दक्षिणी बस्ती के जलमग्न होने के बाद द्वारवती (द्वारका का दूसरा शहर) की उत्तरी बस्ती का निर्माण किया होगा। संभवतः, यह उत्तरी बस्ती (दूसरा द्वारका) महाभारत युग (3162 ईसा पूर्व) के दौरान अस्तित्व में थी, जो अचानक सुनामी में भर गई थी। यह उत्तरी बस्ती 2000-1500 ईसा पूर्व के आसपास पूरी तरह से समुद्र में डूब गई थी।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि देवकीपुत्र वासुदेव कृष्ण ऋग्वैदिक युग में 11153-11050 ईसा पूर्व के आसपास रहते थे और घोर आंगिरस के शिष्य थे, जबकि वासुदेव कृष्ण के वंशज और आचार्य सांदीपनि के शिष्य श्रीकृष्ण महाभारत युग में 3223-3126 ईसा पूर्व के आसपास रहते थे।

देवकीपुत्र कृष्ण की जन्म तिथि (25 मई 11153 ईसा पूर्व)

दिलचस्प बात यह है कि हरिवंश के विष्णु-पर्व में कंस-वध की तारीख से संबंधित दो सत्यापन योग्य खगोलीय संदर्भों का उल्लेख है। कंस का जवाब देते हुए, अंधक हमें बताता है कि मंगल ने पहले ही स्वाति और चित्रा नक्षत्रों के बीच वक्री गति पूरी कर ली थी। उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि एक धूमकेतु भरणी से शुरू होकर 13 नक्षत्रों को पार कर गया था।

केतुना धूमकेतोस्तु नक्षत्राणि त्रयोदश।
भरण्यादीनि विद्धानि नानुयान्ति निशाकरम्।।

(– हरिवंश : विष्णु पर्व, 23.27)

स्टेलारियम सिमुलेशन से पता चलता है कि हैली का धूमकेतु 10 सितंबर 11143 ईसा पूर्व (स्पष्ट परिमाण 8.5) पर भरणी में था। यह जनवरी 11142 ईसा पूर्व में पूर्वा भाद्रपद में चला गया। 21 जनवरी 11142 ईसा पूर्व से 21 फरवरी 11142 ईसा पूर्व की अवधि के दौरान, हैली का धूमकेतु पूर्व भाद्रपद नक्षत्र से पूर्वा फाल्गुनी तक 180 डिग्री पार कर गया, ठीक 13 नक्षत्र। यह पूरी तरह से हरिवंश के विष्णु पर्व में दिए गए खगोलीय विवरण से मेल खाता है। मई-जुलाई 11142 ईसा पूर्व के दौरान मंगल भी वक्री था। आश्चर्यजनक रूप से, हरिवंश कंस वध के वर्ष से संबंधित सटीक खगोलीय विवरण देता है। इन सत्यापन योग्य खगोलीय विवरणों को महाभारत युग के दौरान समझाया नहीं जा सकता है।

पुराणों के अनुसार, श्रीकृष्ण ने माघ अमावस्या की तिथि के करीब कंस का वध किया था जब वे 11 वर्ष 6 महीने के थे। सत्यापन योग्य खगोलीय विवरण को ध्यान में रखते हुए, श्रीकृष्ण ने 24 नवंबर 11142 ईसा पूर्व माघ अमावस्या को कंस का वध किया था।

तदनुसार, देवकीपुत्र वासुदेव कृष्ण का जन्म 25 मई 11153 ईसा पूर्व श्रवण कृष्ण अष्टमी, रोहिणी नक्षत्र में हुआ था। शनि और गुरु उच्च में थे। तुला राशि में शनि 20 अंश पर और गुरु कर्क राशि में 2 अंश पर था। चंद्रमा भी वृष राशि में उच्च का था। सूर्य और बुध सिंह राशि में थे।

॥ श्री वेदवीर आर्य

एम. ए. संस्कृत, दिल्ली विश्वविद्यालय,
डॉ. राधाकृष्णन स्मृति स्वर्णपदक एवं
सी. डी. देशमुख स्मृति स्वर्णपदक से सम्मानित,
विगत 7 वर्षों में भारतीय इतिहास तथा गणित विषय पर आधारित 5 पुस्तकों का लेखन,
सम्प्रति : भारतीय रक्षा लेखा महानियंत्रक में संयुक्त आर्थिक सलाहकार।

सन्दर्भ:

9. वेदवीर आर्य, आर्यभट्ट प्रकाशन, हैदराबाद, 2019, अध्याय 2 द्वारा “द ओरिजिन्स ऑफ द क्रिश्चियन एरा: फिक्शन ऑर फैक्ट।”

अनुवादक - डॉक्टर आशुतोष अंगिरस

o o o

ऋतंभरा

नदी के दो किनारे एक दूसरे के बारे में क्या सोचते होंगे? कभी इस पर ध्यान दे कर देखिए। ठीक वैसे ही जैसे आप किसी अन्य से तुलना करते हैं। इस प्रकार जो उत्तर मिलें उनमें आप के मन की सच्चाई है। यदि इस सच्चाई को आप ईमानदारी से स्वीकार कर लें और जो क्रांति घटे उस पर ध्यान लगाएँ। तो आत्मबोध हो जाएगा।

o

न सुख सदा रहेगा। न दुःख सदा रहेगा।
सुख सपने की तरह है, आँख खुली और ग़ायब।
दुःख तो पानी में उठता बुलबुला है।
उसका फूटना निश्चित है।
दोनों भगवान के द्वारा दिए गए हैं।
एक को अपनाओ, दूसरे को ठुकराओ,
तब तो भगवान के प्रति व्यवहार में त्रुटि है।

o

यदि चित्त में विकार आता है तो शरीर में विकार स्वाभाविक है।

o

धर्म वह बोध है जिसके द्वारा हमें अपनी चेतना का बोध होता है और जड तथा जीव में चैतन्य तत्व का दर्शन होता है।

o

AppZoro Technologies Inc.
Mobile and Web App Development Company
www.AppZoro.com

With
Best Wishes

What We Do

Mobile App Development
Web App Development
IOT
User Interface & User Exp.

Call in or Email us today For your FREE Estimation!
Call - 678-462-4034 or Email - Info@Appzoro.Com

महाभारत के कृष्ण कब हुए?

महाभारतकालीन तथा गीता के उपदेशक श्रीकृष्ण का जन्म कब हुआ था? 18 दिनों तक चलनेवाला महाभारत का युद्ध कबसे कब तक हुआ? द्वारका नगरी कब बनाई गई तथा कब डूब गई? ये प्रश्न अकसर मन में उठते रहते हैं। यहाँ लेखक ने वैज्ञानिक शोधों तथा महाभारत, हरिवंश आदि प्राचीन साहित्यिक स्रोतों को आधार पर सिद्ध किया है कि महाभारत के कृष्ण का जन्म 5633 ई.पू. में हुआ था। इसी के साथ लेखक ने कंसवध, महाभारत युद्ध आदि प्रमुख घटनाओं की तिथियों की गुत्थी भी सुलझाई है।

o o o

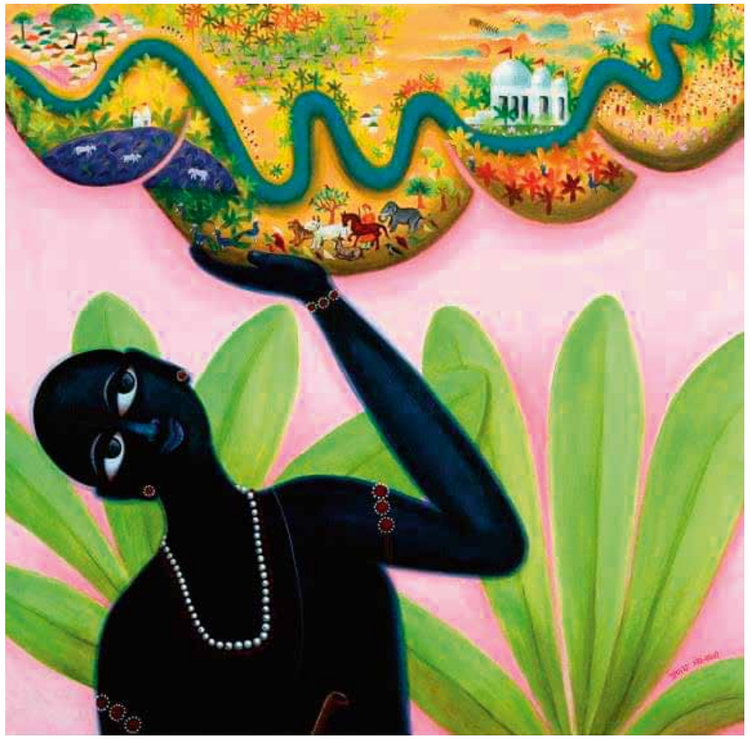

कृष्ण 'भगवद्गीता' के माध्यम से विश्व की सर्वश्रेष्ठ ज्ञानपुस्तक अथवा 'महाभारत' के माध्यम से, मानवता का सबसे विस्तृत ऐतिहासिक पाठ अथवा भक्ति आंदोलनों जैसे 'हरे कृष्ण' के माध्यम से सार्वभौम रूप से जाने जाते हैं। कृष्ण की इस सार्वभौम लोकप्रियता के बावजूद कृष्ण का कोई जीवन रेखाचित्र नहीं है, विशेष रूप से एक जो इस युग-निर्माता के बारे में अनुभवजन्य, उद्देश्य और इस प्रकार वैज्ञानिक प्रमाण पर आधारित हो। इस तरह के सारांश के अभाव के पीछे क्या कारण हो सकता है? इस लघु निबन्ध में महाभारत, हरिवंश, विष्णु पुराण और भागवत पुराण साक्ष्य एकत्र किए गये हैं तथा श्रीमध्वाचार्य जैसे वैष्णव आचार्यों की टिप्पणियों में कृष्ण के जीवन की संक्षिप्त जीवनी का सारांश प्रस्तुत किया गया है।

इन पंक्तियों के लेखक ने महाभारत युद्ध का समय खगोलशास्त्र पर आधारित तीन सौ से अधिक साक्ष्यों का वैज्ञानिक पद्धति अपनाते हुए निर्धारित किया है और इससे प्राप्त वर्ष 5561 ई.पू. है। विशेषकर 16 अक्टूबर से 2 नवम्बर तक की अवधि महाभारत के 18 दिनों के युद्ध की है।

प्राचीन भारतीय कथाओं में श्रावण कृष्ण अष्टमी के दिन तथा मध्यरात्रि को कृष्ण-जन्म के समय के रूप में इंगित किया गया है। 'हरिवंश' के साक्ष्य हमें बताते हैं कि यह वसंत के अंत और ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ का समय था। इस समय भूमि सूखी थी और पेड़ काटे जा रहे थे। 'हरिवंश' ने वासुदेव के मार्ग पर गाय के सूखे गोबर का भी वर्णन किया है कि जब वासुदेव कृष्ण को नंद तथा यशोदा के पास ले गये थे। वसंत के अंत अथवा ग्रीष्म का प्रारंभिक समय श्रावण के चांद्रमास से मेल खाता है, जो ईसापूर्व की छठी सहस्राब्दी से अच्छी तरह संगत है। खगोलशास्त्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित द्वारा संदर्भित 'महाभारत-निर्णयामृत' के साक्ष्य से इसकी पुष्टि होती है कि जब वर्षा ऋतु सूर्य की कन्या, तुला और वृश्चिक राशियों में संचरण के साथ होती थी। यह ऋतु-संचार ई.पू. छठी सहस्राब्दी के समय की ओर इंगित करता है।

इन पंक्तियों के लेखक ने महाभारत युद्ध का समय खगोलशास्त्र पर आधारित तीन सौ से अधिक साक्ष्यों का वैज्ञानिक पद्धति अपनाते हुए निर्धारित किया है और इससे प्राप्त वर्ष 5561ई.पू. है। विशेषकर 16 अक्टूबर से 2 नवम्बर तक की अवधि महाभारत के 18 दिनों के युद्ध की है। इस तिथि को विज्ञान के कई विषयों, जैसे खगोल-विज्ञान, जल-विज्ञान, भू-विज्ञान, भू-भौतिकी, भू-रसायन विज्ञान, समुद्र-विज्ञान, नदियों के स्वरूप-गति विज्ञान, जलवायु विज्ञान, पुरातत्त्व, भौतिक नृ-विज्ञान और आनुवंशिकी से अत्यधिक समृद्ध साक्ष्यों के द्वारा पुष्टि की गयी है। 5561 ई.पू. का वर्ष विशेष है जो महाभारत युद्ध का वर्ष है तथा सूचना का अति महत्त्वपूर्ण स्रोत है, जो कृष्ण-चरित्र के त्रुटिहीन तथा वास्तविक जीवन-अवधि को स्थापित करने की अनुमति प्रदान करते हैं।

महाभारत पाठ हमें बताता है कि कृष्ण का द्वारका शहर समुद्र के पानी के प्रवाह से आई बाढ़ के कारण नष्ट हो गया था और यह विनाश महाभारत युद्ध के 36 साल बाद अर्थात् इस तरह 5525 ई.पू. वर्ष में हुआ था। आश्चर्य नहीं कि गुजरात के तटीय क्षेत्र तथा संसार भर के समुद्र विज्ञान से उपलब्ध प्रमाण द्वारका में समुद्रीय जल के प्रवाह से आये विनाश के दावे की पुष्टि करते हैं। सिन्धु सागर में ई.पू. छठी सहस्राब्दी के मध्य में (5525 ई.पू.) समुद्री जल के 15 से लेकर 23 मीटर तक उठान के अनेकानेक प्रमाण मिलते हैं तथा इसके साथ विश्व भर से प्राप्त प्रमाण इस घटना को पुष्ट करते हैं।

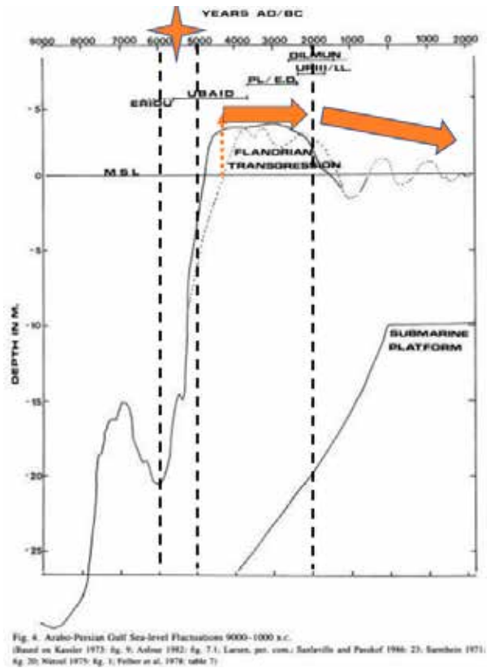

Fig. 4. Arabo-Persian Gulf Sea-level Fluctuations 9000–1000 B.C.

उदाहरणार्थ डॉ. पाल ब्लैंचॉन ने ई.पू. छठी सहस्राब्दी के मध्य में कैरेबियन सागर के सात स्थानों में अचानक समुद्री जल के उठने के साक्ष्य दिये हैं। इसी तरह के साक्ष्य मेंन(अमेरिका) के पूर्वी तट, डोगरबैंक (यूरोप), ग्रेट बैरियर रीफ (आस्ट्रेलिया) तथा विश्व के अनेक अन्य स्थानों में दिखाई दिए हैं।

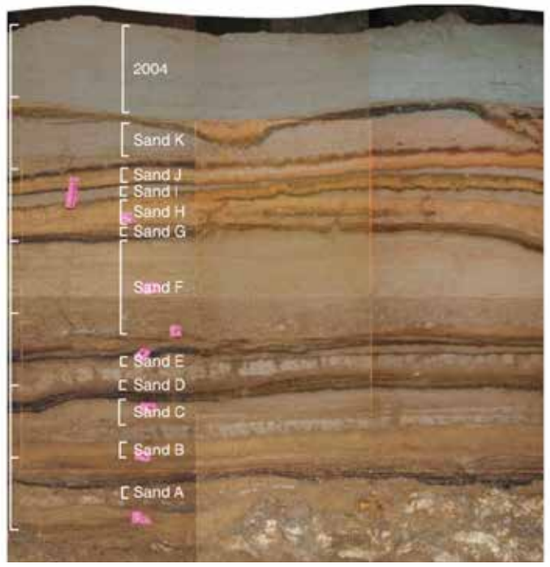

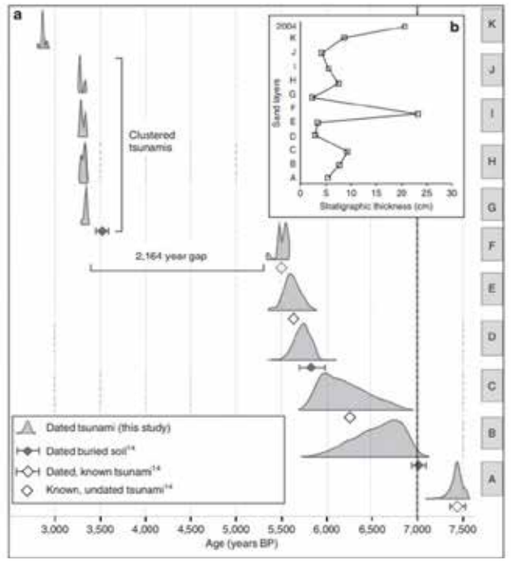

इंडोनेशिया के सुमात्रा द्वीप पर स्थित एक गुफा समुद्र स्तर में वृद्धि का उत्कृष्ट रिकार्ड रखती है और सुनामी की शुरुआत 5525 ई.पू. की इस घटना से होती है।, जो हमारे समय तक 3500 ई.पू. से 1500 ई.पू. की अवधि के दौरान 'कोई सुनामी नहीं' के उत्सुकतापूर्ण साक्ष्य से जुड़ी है।

प्रो. सोमशेखर रामास्वामी ने 6000 ई.पू. से 4000 ई.पू. के मध्य तमिलनाडु के पुमबुहार बंदरगाह के विनाश के साथ साथ तमिलनाडु के मयूरम तक अनेक किलोमीटर तक समुद्री जल के धरती तक प्रवेश के साक्ष्य प्रदर्शित किये हैं। कोलम्बिया विश्वविद्यालय के दो भू-वैज्ञानिक रेयान तथा पिटमैन ने 5525 ई.पू. के आसपास बोसफोरस चैनल के रास्ते से अचानक बड़ी मात्रा में समुद्री जल के बाहर आने से काला सागर के निर्मित होने के साक्ष्य दर्शाये हैं। काला सागर (Black Sea) की इस निर्माण प्रक्रिया को उन्होंने विभिन्न मानकों के आधार पर निर्धारित किया कि जहाँ समुद्र स्तर का उठता हुआ स्तर जलप्रपातीय प्रभाव वाला था भूमध्य सागर-एजियन समुद्र-मरमारा में बासफोरस चैनल के माध्यम से अंततोगत्वा पानी का दबाब इतना बढ़ गया कि समुद्री जल झील में परिवर्तित हुआ जो अविलम्ब काला सागर में बदल गया।

भारत के पश्चिमी समुद्री तट का समुद्र जल स्तर 4000 ई.पू. से 2000 ई.पू. में घटते जलस्तर को दिखाता है, जो कि पुमबुहार (4000 ई.पू.-500 ई.पू.) के आंकड़े के समान है तथा सुमात्रा के गुफा-प्रमाण और यह प्रमाण द्वारका में 3500 ई.पू. से लेकर 1500 ई.पू. में आयी बाढ़ तथा विनाश के दावे को झुठलाता है।

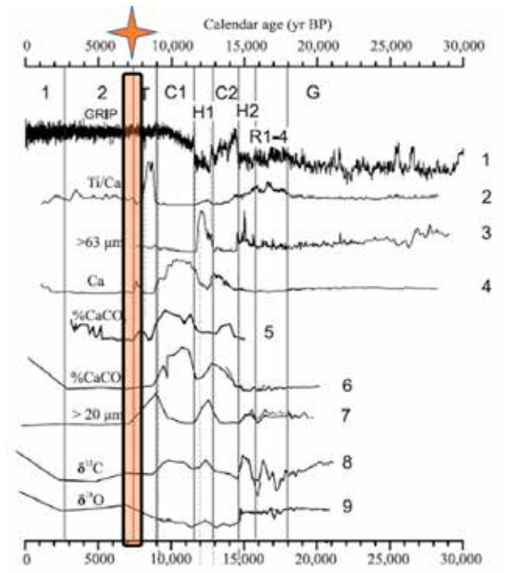

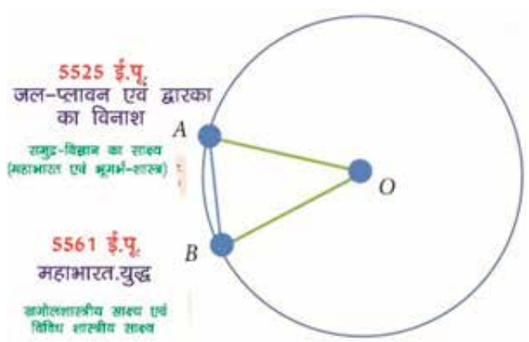

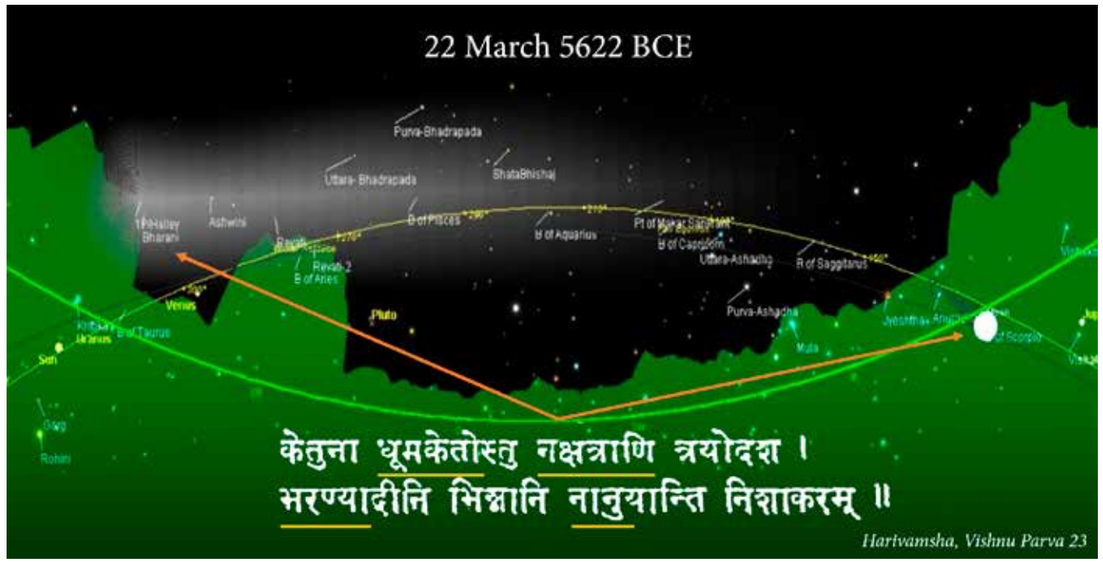

महाभारत के साक्ष्य कृष्ण के पृथ्वी से प्रस्थान के समय (5525 ई.पू.) तथा द्वारका में आयी बाढ़ तथा विनाश से मिलते हैं।

भागवत-पुराण बतलाता है कि जब कृष्ण ने कंस का वध किया था, उस समय उनकी आयु 11 वर्ष की थी। हरिवंश कृष्ण द्वारा कंस को मारे जाने के समय की अपवादस्वरूप विलक्षण खगोलशास्त्रीय प्रवृत्ति को बताता है। इनमें से कुछ की प्रकृति प्रातिनिधिक है जैसे कि दो बंदरों द्वारा गाड़ी खींचने के ग्रहण के अवसर पर मंगल ग्रह का वक्री होकर विचरण करना, एक दुष्ट ग्रह के द्वारा स्वाती नक्षत्र तथा बुध ग्रह को दुष्प्रभावित करना, जो कि सूर्यास्त के बाद दृष्टिगोचर होता है।

दूसरी ओर धूमकेतु के प्रकट होने का आकर्षक साक्ष्य है। इस धूमकेतु का विस्तार इतना था कि भरणी नक्षत्र से लेकर सम्पूर्ण दिखाई देने वाले आकाश को उसने ढक लिया था। इस साक्ष्य का भावोत्तेजक पक्ष है कि पिछले दस हजार वर्षों में यह एक दुर्लभ खगोलीय घटना है। साथ ही, 'हरिवंश' का धूमकेतु संबंधी यह वर्णन 5622 ई.पू. से स्पष्टतया मेल खाता है।

तथापि, हमारा आकर्षण यहीं पर समाप्त नहीं होता। यह तो वास्तव में इसी बिन्दु से आरंभ होता है। याद कीजिए कि कृष्ण ने जब कंस वध किया था, तो उस समय कृष्ण की आयु 11 वर्ष की थी। यह कृष्ण की कुल आयु 108 वर्ष के बराबर सिद्ध करती है।

[(5622-5525)+11=97+11=108]

अब कोई प्रश्न कर सकता है कि यह आकलन कैसे कृष्ण की दीर्घायु से संबंधित किसी प्रचलित उपलब्ध साक्ष्य से मेल खाता है? कृष्ण की जीवन-अवधि से संबंधित तीन विशिष्ट साक्ष्य हमें उपलब्ध हैं। विष्णु-पुराण बताता है कि कृष्ण 100 वर्षों से अधिक जीवित

इस प्रकार, हम पूर्ण विश्वास से यह कह सकते हैं कि जब कृष्ण 11 वर्ष के थे तो उन्होंने कंस का वध 5622ई.पू. में किया था और इस प्रकार कृष्ण का जन्म 5633ई.पू. को हुआ था। इस प्रकार कृष्ण की जीवन-अवधि [5633-5525ई.पू.] है।

रहे। श्रीमध्वाचार्य कृत 'महाभारत-तात्पर्य-निर्णय' में कृष्ण की आयु 107 वर्ष तथा भागवत-पुराण में 125 वर्ष बतायी गयी है। अतः इन पंक्तियों के लेखक का दावा है कि कृष्ण की आयु 108 वर्ष थी, जो खगोल शास्त्र तथा समुद्रविज्ञान पर आधारित आनुभविक प्रयोगों पर आधारित है, और यह 'महाभारत', 'हरिवंश', 'महाभारत-तात्पर्य-निर्णय' तथा 'विष्णु-पुराण' के साक्ष्यों से मेल खाती है।

भारावतरणार्थाय वर्षाणामधिकं शतम् ।
भगवानवतीर्णोऽत्र त्रिदशैस्सह चोदितः ।। 18 ।।
दुर्वृत्ता निहता दैत्या भुवो भारोऽवतारितः ।
त्वया सनाथास्त्रिदशा भवंतु त्रिदिवे सदा ।। 19 ।।
तदतीतं जगन्नाथ वर्षाणामधिकं शतम्
इदानीं गम्यतां स्वर्गो भवता यदि रोचते ।। 20 ।।

(– *विष्णु-पुराण 5.37.18-20*)

उपदिश्य परं ज्ञानमुद्धवायामुपाश्रमम् ।
बदर्याख्यं प्रापयित्वा सप्तमाब्दं शतोत्तरम् ।

(– *महाभारत-तात्पर्य-निर्णय : 32.9*)

यदुवंशेऽवतीर्णस्य भवतः पुरुषोत्तम।
शरच्छतं व्यतीयाय पञ्चविंशाधिकं प्रभो।।

(*भागवत-पुराण : 1.6.25*)

इस प्रकार, हम पूर्ण विश्वास से यह कह सकते हैं कि जब कृष्ण 11 वर्ष के थे तो उन्होंने कंस का वध 5622ई.पू. में किया था और इस प्रकार कृष्ण का जन्म 5633ई.पू. को हुआ था। इस प्रकार कृष्ण की जीवन-अवधि [5633-5525ई.पू.] है।

॥ डॉ. नीलेश नीलकंठ ओक

खगोलशास्त्र, पुरातत्त्व, भूगर्भशास्त्र, क्वांटम यांत्रिकी, अर्थशास्त्र आदि के साथ-साथ प्राचीन भारतीय दर्शन के गम्भीर अध्येता। भारतीय खगोलविद्या तथा गणित के सिद्धान्तों के आधार पर महाभारत, रामायण एवं भीष्म के निर्वाण की तिथि पर आधारित 3 पुस्तकों का लेखन।

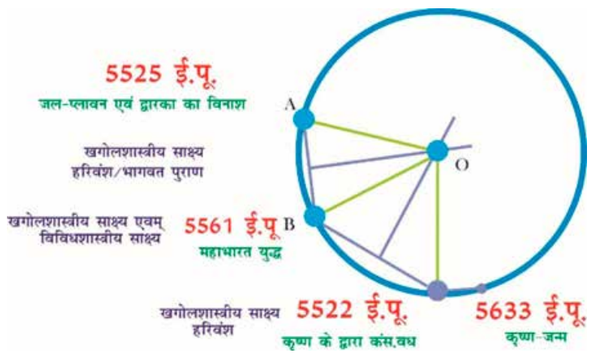

हरिवंश में वर्णित कृष्ण के जन्म के समय से 5633ई.पू. को कृष्ण-जन्म के वर्ष के रूप में और भी सहायता मिलती है। कृष्ण का जन्म श्रावण कृष्णपक्ष (भाद्रपद कृष्णपक्ष-अमांत गणना के अनुसार) तथा चान्द्रमास की कृष्ण अष्टमी को रोहिणी नक्षत्र में हुआ था। यह समय 5633 ई.पू. की 27-28 अर्द्धरात्रि का रहा होगा। यह समय ग्रीष्म ऋतु के पहले अर्द्ध का था जबकि मौसम सूखा तथा गर्म होता है। हरिवंश में इस मौसम की स्थितियों तथा वातावरण का वर्णन करते हुए चित्रित किया गया है कि उस समय वृक्ष काटे जा रहे थे और बाहर कटे वृक्षों को इकट्ठा किया जा रहा था तथा रास्ते में गायों का सूखा गोबर देखा जा सकता था।

शकटावर्तविपुलं
कण्टकीवाटसंकुलम्।
पर्यन्तेष्वावृतं
वन्यैर्बृहद्भिः पतितैर्द्रुमैः।।
वत्सानां रोपितैः
कीलैर्दामभिश्च विभूषितम्।
करीषाकीर्णवसुधं
कटच्छन्नकुटीमठम्।।

(– *हरिवंश : विष्णुपर्व, 5.23-24*)

हरिवंश में वर्णित मौसम का यह चित्रण ग्रीष्म ऋतु के चन्द्र मास के श्रावण के अनुकूल है और इस प्रकार ई.पू. की छठी सहस्राब्दी के मध्य के अनुरूप है। निःसंदेह चान्द्र मास में मौसम के साथ बदलाव पृथ्वी की धुरी की वास्तविकता के कारण है।

अनुवादक - डॉक्टर आर. के. गुप्ता

o o o

संगीत में परंपरा और प्रगति का अद्भुत संगम
'श्रद्धा वही अंदाज नया'

ath bhakti

भजन संस्कृति का नया कलेवर
पारंपरिक भजनों को युवा सुर और
संगीत में सुनने के लिए सब्सक्राइब करें
अथ भक्ति का यूट्यूब चैनल

CC COUNTERTOPS AND CABINETS
Furniture and Quartz Manufacturer
www.countertops-cabinets.com

CaseGoods | Vanity Quartz Tops | Wooden Vanity Bases | Soft Seating | Kitchen Cabinets

With
Best Wishes

Headboard

Wall Unit

Vanity Bases

Kitchen Countertop

Call in or Email us today For your FREE Estimation!
678-431-9041 or info@countertops-cabinets.com
Factory: SP 2, RIICO Industrial Area, Tonk Road, Shivdaspura, Jaipur (Raj.) INDIA

विश्व में श्रीकृष्ण के पदचिह्न

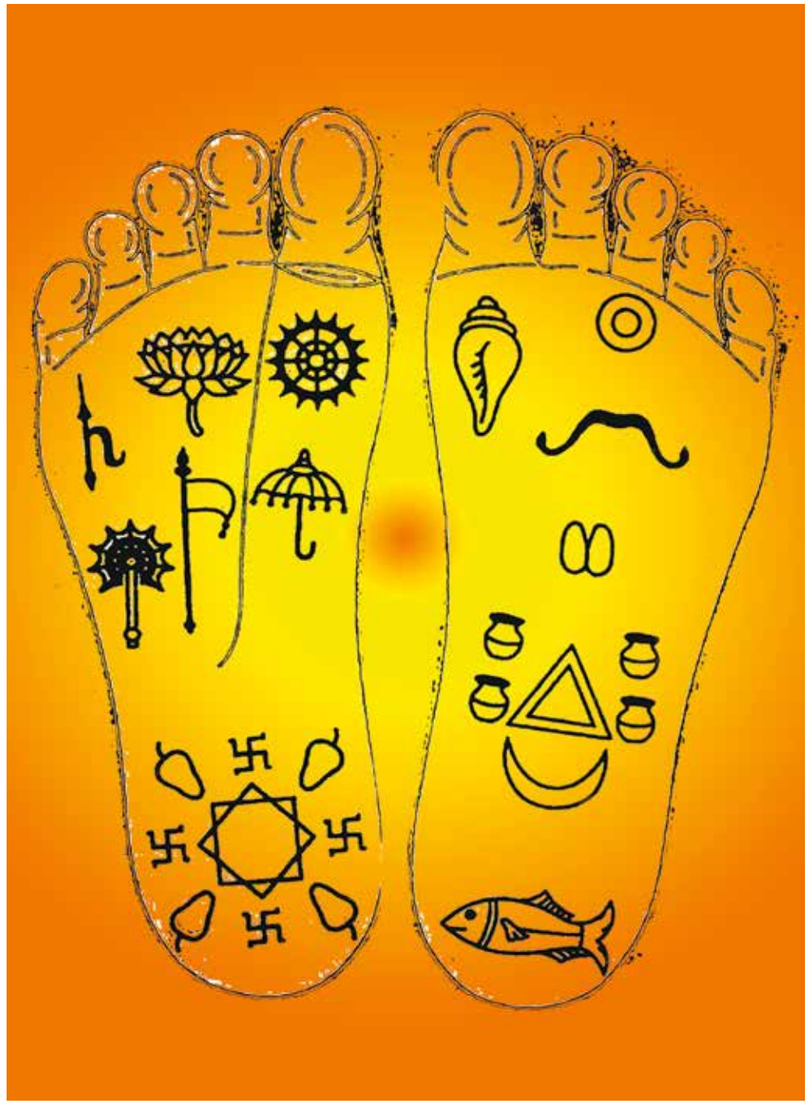

Courtesy- Jain Kamal

श्रीकृष्ण का आकर्षण इतना तीव्र है कि वे सात समुद्र पार के श्रद्धालुओं को आकृष्ट करने में सक्षम हैं। आज की सच्चाई है कि विभिन्न देशों के विभिन्न मतों के अनुयायी भी कृष्णभक्ति में झूमते हुए एक साथ बैठकर भजन-कीर्तन करने लगते हैं।
आज कृष्ण के पदचिह्न गोकुल-वृंदावन-भारतवर्ष होते हुए विश्व के कई देशों में पड़ चुके हैं।

◦ ◦ ◦

इस पृथ्वी पर उनके जीवनकाल के दौरान कई अवसरों और भाषणों में श्रीकृष्ण ने अपनी सर्वव्यापिता की पुष्टि स्वयं की। पृथ्वी पर एक ईश्वर-चेतन सुपर-आत्मा स्वयं को दिव्य प्रकृति की महानता के लिए खोलती है, वह हर जगह ईश्वर की ऐसी उपस्थिति की कल्पना कर सकती है। भगवान् व्यक्ति में निम्न प्रकृति (आसुरीय और राक्षसी) को अपनी शक्तियों द्वारा निरंतर उच्च प्रकृति में बदलकर विकसित करते हैं। जैसे-जैसे यह वृद्धि होती है। माया या भौतिक आवरण का रूप मुरझा जाता है। आत्मा को कर्म का अधिक महत्त्व और अस्तित्व का वास्तविक सत्य मिलता है। ऐसे में व्यक्ति की दृष्टि जीव में श्रीकृष्ण के लिए खुलती है, साथ ही ब्रह्मांड में श्रीकृष्ण के दर्शन करती है। मनुष्य अपने अंत:करण को देख सकता है और बाहर से उस अनंत आत्मा को जान सकता है, जिससे समस्त अस्तित्व उत्पन्न होता है। जो सभी में मौजूद है और उसके द्वारा और उसी में सभी हमेशा मौजूद हैं। यह योग दृष्टि है जो विश्व में हर जगह श्रीकृष्ण के पदचिन्हों को देखती है।

लेकिन सवाल यह है कि क्या यह श्रीकृष्ण के भौतिक पदचिह्न हैं? जैसा कि हम भागवत, महाभारत या पुराणों, अन्य स्मृतियों या श्रुतियों के कई स्थानों में किए गए उल्लेखों में देखते हैं? या, यह योग बोध है? या एक भक्त व्यक्ति के मन में श्रीकृष्ण की दिव्य रूप से देखी गई विशेषताएँ हैं? उत्तर दोनों है। पहला प्रश्न उन सामान्य भक्तों के लिए प्रासंगिक है जो या तो जहाँ भी रहते हैं पूर्ण भक्ति के साथ भगवान् के चरणों की पूजा करते हैं, या फिर प्राचीन भारत में पवित्र स्थानों की यात्रा करने के लिए बाहर जाते हैं, जहाँ श्रीकृष्ण ने अपने पैरों के निशान छोड़े थे, उनकी छत्र के नीचे अपनी लीला करने के लिए माया, दूसरा प्रश्न प्रासंगिक है और इसका उत्तर दिया जा सकता है और समझाया जा सकता है कि कैसे और क्यों उनके पैरों के निशान (शाब्दिक अर्थ में नहीं, बल्कि दार्शनिक) दुनिया भर में श्रीकृष्ण के उन भक्त प्रेमियों में मौजूद हैं जिन्होंने उन्हें किसी भी रूप में ग्रहण किया है या उनसे अपने संबंध बनाए हैं। श्री कृष्ण ने शरीर रूप में लगभग पाँच हजार साल पहले इस धरती को छोड़ दिया था। परंतु उनकी अमिट लीलाएँ और शब्द हमेशा चमकते, हमेशा जीवित और हमेशा प्यार करने वाले बने रहे। क्या यह पैरों के निशान देखने की दिशाएँ हैं?

> उनकी लीलाओं और संवादों की स्मृतियाँ और प्रतिबिंब बहुत गहरे हैं जो उन दार्शनिकों और विचारकों के दिलों में फैले हुए हैं जो स्वयं को उनके करीब महसूस करते हैं, धर्म, जाति, पंथ और समुदायों के बावजूद दुनिया भर में ध्यान और सात्विक कर्म योग के माध्यम से खुद को भेदते हैं। ऐसी समस्त स्मृतियाँ श्रीकृष्ण के अमिट पदचिह्न हैं जो सात्विक शक्ति के चश्मे से खोजे जा सकते हैं।

पदचिह्न : विचारों की विविधता

सभी संभावनाओं का प्रतीक, मानव की सभी संभावनाओं का पूर्ण विकास, श्रीकृष्ण एक साथ परमात्मा का भी पूर्ण अवतार हैं। एक प्रेमी के लिए वे सबसे सुंदर है। इसलिये उनके लिये सुंदर वस्त्र और फूलों के आभूषण तैयार किये जाते हैं। प्यारी माँ के लिए वे माखनचोर हैं। एक योद्धा के लिए वे सबसे बहादुर और जीतने वाले प्रतिद्वंद्वी हैं ; एक मित्र के लिए वे बचकाने हैं, लेकिन सबसे भरोसेमंद भी हैं; धोखा देने के लिए वे सबसे कठोर और रणनीतिज्ञ

हैं; एक राजनयिक के लिए वे सबसे चतुर दूत हैं; गिरे हुए के लिए वे सबसे भरोसेमंद बचावकर्ता है; एक कायर के लिए वे लड़ने के लिए खड़ा हो जाने में सबसे बढ़िया सलाहकार हैं। सबसे शक्तिशाली के लिए वे सर्वशक्तिमान हैं; एक भ्रष्ट के लिए वे सबसे कठोर दंडक हैं। वे अनेकों के सर्वोच्च आश्रय हैं, सब कुछ के एकमात्र ज्ञाता और जानने वाले हैं। उन्होंने एक चरवाहे, एक महान गुरु, एक आज्ञाकारी और मेधावी छात्र, एक महान राजा, एक रक्षक, एक आदर्श मित्र, एक दार्शनिक, एक निपुण सारथी, एक अद्वितीय बांसुरी वादक, एक आदर्श और सुंदर प्रेमी के रूप में स्वयं को प्रस्तुत किया । उन्होंने नारद को वीणा बजाने की कला का पाठ पढ़ाया। उनकी बांसुरी ने गोपियों के दिलों को रोमांचित कर दिया और सभी गायों को एक जगह इकट्ठा कर दिया। उन्होंने लगभग सब कुछ किया और अपना उत्कृष्ट प्रदर्शित किया। वे वास्तव में सभी के स्वामी थे। एक महान शिक्षक, एक आध्यात्मिक प्रेरणा, एक राजनेता और 'महायोगेश्वर'– जो उनके गुणों की थाह लेने का साहस करते हैं उन पर मोहित हो जाते हैं।

ये सभी महाकाव्य अनेक कवियों के पतले लेंस के माध्यम से देखे गए उनके चरित्र के साक्ष्य हैं। उनकी लीलाओं और संवादों की स्मृतियाँ और प्रतिबिंब बहुत गहरे हैं जो उन दार्शनिकों और विचारकों के दिलों में फैले हुए हैं जो स्वयं को उनके करीब महसूस करते हैं, धर्म, जाति, पंथ और समुदायों के बावजूद दुनिया भर में ध्यान और सात्विक कर्म योग के माध्यम से खुद को भेदते हैं। ऐसी समस्त स्मृतियाँ श्रीकृष्ण के अमिट पदचिह्न हैं जो सात्विक शक्ति के चश्मे से खोजे जा सकते हैं। बस हम यहाँ याद कर सकते हैं कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिव्य दृष्टि प्रदान की ताकि वह उनके असीम रूपों को ब्रह्मांड की व्यापकता में व्याप्त देख सके (– गीता : अध्याय 11) प्रत्यक्ष पदचिह्नों का वर्णन स्वयं श्रीकृष्ण ने किया है– "जो कुछ भी है, वह महान, समृद्ध या शक्तिशाली है, आप जानते हैं कि वह मेरे वैभव के एक भाग का उत्पाद है।" (– गीता : 10.41)

> दुनिया भर में हमेशा और हर जगह श्रीकृष्ण के असीम पदचिन्हों को देखने के लिए जिस चीज की जरूरत है, वह यह है कि इसके लिए तत्पर जीवों को दिये गये दिव्य नेत्र।

ऋक्-संहिता कहती है, **"एकं वा इदं वि बभूव सर्वम्"** (– 8.58.2) जिसका अर्थ है कि सर्वोच्च एक है और वही सब कुछ बन गया। यदि किसी भी निर्मित सत्ता में कोई शानदार गुण या शक्ति है, जिसे 'विभूति' या उनकी सर्वोच्च शक्ति का प्रदर्शन कहा जाता है। ठीक उसी तरह जैसे एक बीज टूटता है और एक पौधे का रूप लेता है, जिसमें से उसके पुष्प प्रफुल्लित होते हैं। यहाँ सभी जीव चेतन हैं; उनकी चेतना सर्वोच्च की प्राथमिक पहचान है। वही चेतना जिसने ब्रह्मांड का निर्माण किया है। जीवन और चेतना अविभाज्य हैं। जीव और उसकी शक्ति भी अविभाज्य हैं। प्रत्येक जीव वैचारिक रूप से निर्माता की एक विभूति है। हालांकि, श्रीकृष्ण का कथन शानदार या शक्तिशाली पारलौकिक विशेषताओं के साथ जीव विभूति को योग्य बनाता है। जैसे एक बीज अपनी आंतरिक शक्ति द्वारा अपने बाहरी आवरण को तोड़ते हुए अपने खोल से बाहर निकलता है, उसी तरह एक जीव को भी 'अपरा प्रकृति' से बाहर आना पड़ता है और पूर्ण रूप से स्वयं को 'परा प्रकृति' की ओर मोड़ना पड़ता है– इस प्रक्रिया को श्रीकृष्ण 'ऊर्ज' कहते हैं। (गीता 10.41) या यूँ कहिए जीव अपने आप को निम्न से उच्च चेतना तक ऊपर उठाएं।

इस प्रकार श्रेष्ठ मानव मन, हृदय, इंद्रिय-अंग, बुद्धि और भावनाएँ पदचिन्हों को इस रूप में देखने के लिए शक्तिशाली हो जाते हैं। सामान्य चेतना में लौटकर, वे विकृत, मोहग्रस्त या भ्रमित हो जाते हैं– तब उनके लिए पदचिह्न खो जाते हैं।

एक बार यह हो जाने के बाद, अगला कदम 'श्री' (10.41) या सौंदर्य की प्राप्ति है। यह सौन्दर्य समय के साथ नष्ट होने या मिटने के लिए सांसारिक सौंदर्य नहीं है, यह एक वैष्णव के लिए विष्णु की शक्ति और एक तांत्रिक के लिए सर्वोच्च विद्या की शक्ति है।

दुनिया भर में हमेशा और हर जगह श्रीकृष्ण के असीम पदचिन्हों को देखने के लिए जिस चीज की जरूरत है, वह यह है कि इसके लिए

> गीता के माध्यम से श्रीकृष्ण की शिक्षा का महत्त्व और प्रभाव गैर-हिंदू धर्मों के विश्वासियों के बीच भी दिन-प्रतिदिन प्रासंगिक और प्रशंसनीय रूप में अधिक से अधिक गहराई से पहचाना जा रहा है, क्योंकि मानवता और प्राकृतिक प्रणालियों के सांसारिक संकट अधिक से अधिक जटिल होते जा रहे हैं।

तत्पर जीवों को दिये गये दिव्य नेत्र। केवल वे खोजी मनुष्य ही, जिन्होंने स्पष्ट रूप से भगवान् के सामने आत्मसमर्पण कर दिया है और जिनके स्वधर्म और स्वभाव को इस सांसारिक पृथ्वी में इच्छाहीन सात्विक कर्म के लिए दैवीय रूप से व्यवस्थित किया गया है, इस नेत्र या दृष्टि के पात्र हो सकते हैं। अर्जुन अपने वीरता भरे अतीत को भूल गए, एक सामान्य व्यक्ति की स्थिति में आ गए। अर्जुन के त्याग का स्तर चरम पर पहुंच गया, वे पूर्ण समर्पित भाव में आ गए। उन्होंने श्रीकृष्ण के चरणों में प्रार्थना की, "हे भगवान्, यदि आप मुझे आप के दिव्य स्वरूप को देखने के लायक समझते हैं, तो, हे योगियों के ईश्वर, आप मुझे अपना अपरिवर्तनीय सनातन स्वरूप दिखाइए"। इस प्रकार, अर्जुन ने स्पष्ट रूप से भगवान् के सामने आत्मसमर्पण कर दिया और उन गुणों को प्राप्त कर लिया, जिनके द्वारा वह कृष्ण के सार्वभौमिक रूप को देखना चाहता था। अर्जुन के मित्र श्रीकृष्ण उनके सामने पहले की तरह खड़े रहे, लेकिन उन्होंने उन्हें अनंत रूपों में रूपांतरित पाया। श्रीकृष्ण ने कहा, "मेरे इस रूप को देखना वास्तव में बहुत कठिन है, जिसे आपने देखा है। देवता भी इस रूप को निहारने के लिए तरसते हैं!"

(–गीता:11.52)। उन्होंने आगे कहा, "न वेदों से, न तपस्या से, न ही यज्ञ से मुझे ऐसे देखा जा सकता है जैसे तुमने मुझे देखा है। लेकिन एकाग्र भक्ति से मैं इस रूप में, वास्तविक रूप में जाना और देखा जा सकता हूं, मैं भी प्रवेश कर सकता हूं।"(– गीता : 11.53,54)।

अधिक विशेष रूप से, श्रीकृष्ण ने कहा, "योग द्वारा एकाग्र हृदय के साथ, सभी चीजों के लिए समदृष्टि के भाव से, वह सभी प्राणियों में आत्मा और आत्मा में सभी प्राणियों को देखता है। जो मुझे सब में देखता है और सब को मुझ में देखता है, वह कभी मुझसे अलग नहीं होता, और न ही मैं उससे अलग होता हूं" (– गीता : 6.29,30)।

अलंकारिक रूप से हालांकि, एक ही सूर्य लाखों और अरबों में देखा जा सकता है यदि समान संख्या के पेलुसिड पत्थरों पर परिलक्षित होता है। इसी तरह जीव श्रीकृष्ण को हर जगह देख सकते हैं यदि उनका हृदय-फलक इतना पारभासी हो कि श्रीकृष्ण प्रतिबिंबित हो सकें। इसलिए, श्री चैतन्य ने सभी को चेतना के पात्र को पारदर्शी रखने की सलाह दी ताकि जीव हर तरफ श्रीकृष्ण के पदचिह्न बन सकें। अंधा अपने पास की किसी वस्तु को नहीं देख सकता। इसका मतलब यह नहीं है कि वस्तु नहीं है। ब्रह्मांड और उसके अंदर जो कुछ भी है, वह ईश्वर का शरीर है, उन्हें देखना है। श्रीकृष्ण के पदचिन्हों का रहस्य है, लेकिन उन्हें पूरी तरह से जानना, बाहरी आकृतियों और रंगों को अनदेखा करना।

केवल जीवों में ही नहीं, दार्शनिक ईश्वर की शक्ति भौतिक पदार्थों में भी देखते हैं। स्टीवन वेनबर्ग (1933-2021 (– प्यू रिसर्च 2020), एक अमेरिकी नोबेल पुरस्कार विजेता ने यह देखा। (– स्टीवन वेनबर्ग (1992) : 'ड्रीम्स ऑफ़ ए फ़ाइनल थ्योरी', पंथियन)

"कुछ लोगों के पास भगवान् के बारे में इतनी व्यापक और खुले दिल वाली सोच है कि कि वे जहाँ भी देखते हैं भगवान की अनुभूति करते हैं। वे जहां भी भगवान् की तलाश करें, वे उन्हें वहीं पाएंगे। कोई यह कहते हुए पाया है कि 'ईश्वर परमसत्ता है' या 'ईश्वर हमारी सर्वोच्च प्रकृति है' या 'ईश्वर ही ब्रह्मांड है या 'ईश्वर पूर्ण सत्य है।' बेशक, किसी भी अन्य शब्द की तरह, हम 'ईश्वर' को किसी भी शब्द से पुकार सकते हैं। उन शब्दों को हम अपनी पसंद के अनुसार कोई भी अर्थ दे सकते हैं । यदि आप यह कहना चाहते हैं कि 'ईश्वर ऊर्जा है,' तो आप कोयले के एक ढेले में भी ईश्वर को पा सकते हैं।"

गीता के श्लोक 10.41 ने ब्रह्मांड में हर जगह ईश्वर के पदचिह्न की पहचान करते हुए इसी सत्य का संकेत दिया, यहाँ दृष्टि मायने रखती है। उदाहरण के लिए, श्रीकृष्ण शिशुपाल, गोपियों और अर्जुन के सामने प्रकट हुए। पहलेवाले ने उन्हें एक साधारण आदमी और कच्चे दुश्मन के रूप में देखा, दूसरे ने वैदिक 'अधिदैवत' के रूप में देखा, जबकि तीसरे ने एक रहस्यमय चरित्र के रूप में देखा, जो उसे पूरी तरह से ज्ञात नहीं था। इसलिए, श्रीकृष्ण के पदचिन्हों को दृष्टि के तीन कोणों से खोजा जाना चाहिए– मानवीय, ब्रह्मांडीय और आध्यात्मिक। जब एक योगी की तीसरी आँख भगवान् की कृपा से खुलती है, तो वह हर जगह भगवान् को देखता है, जैसा कि वेनबर्ग ने टिप्पणी की थी कि कोयले जैसे पदार्थ को भगवान् के रूप में देखा जा सकता है यदि ऊर्जा को भगवान् की विभूति माना जाए।

श्रीकृष्ण के वैश्विक भौतिक पदचिह्न: एकत्व का भाव

हिंदू धर्म दुनिया में तीसरा सबसे बड़ा धर्म है, जहाँ श्रीकृष्ण को श्रीविष्णु के 8 वें अवतार के रूप में पूजा जाता है। दुनिया के विभिन्न हिस्सों में दुनिया की कुल 7.7 अरब आबादी कहने से अब (2021) लगभग 1.2 अरब हिंदू रहते हैं। यह दुनिया की आबादी का लगभग 16% है। हिंदू धर्म के भीतर लोग विभिन्न सिद्धांतों, प्रथाओं, समाजों, कहानियों और भक्ति में विश्वास करते हैं, लेकिन श्रीकृष्ण सभी हिंदुओं के लिए भक्ति का सामान्य केंद्र रहे हैं, जो विभिन्न महाद्वीपों के लगभग 50 से अधिक देशों में वितरित किए जाते हैं। केवल तीन देशों में हिंदू धर्म प्रमुख धर्म है– लेकिन तीनों में से एक दुनिया का दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश है, भारत, (78.9%)। अन्य दो देश नेपाल (80.6%) और मॉरीशस (48.4%) हैं। हालांकि हिंदू धर्म शायद ही कभी किसी देश का प्राथमिक धर्म है, फिर भी इसकी वैश्विक उपस्थिति है। कैरेबियन, दक्षिण पूर्व एशिया, उत्तरी अमेरिका और दक्षिण अमेरिका सहित दुनिया भर के कई क्षेत्र हिंदुओं की महत्त्वपूर्ण आबादी का समर्थन करते हैं। उक्त तीन देशों के अलावा, हिंदू आबादी फिजी, गुयाना, भूटान, त्रिनिदाद और टोबैगो, सूरीनाम, कतर, श्रीलंका, बहरीन, कुवैत, बांग्लादेश, संयुक्त अरब अमीरात, सिंगापुर, मलेशिया और ओमान जैसे देशों में भी मौजूद है। वहाँ की कुल आबादी का 5.8% और 27.9% के बीच हिंदू आबादी है। यूनाइटेड किंगडम, यूएसए, यू.एस.एस.आर., सऊदी अरब, इंडोनेशिया, पाकिस्तान, न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रेलिया आदि में भी हिंदू आबादी सनातन धर्म में आस्था के साथ है।

गीता के माध्यम से श्रीकृष्ण की शिक्षा का महत्त्व और प्रभाव गैर-हिंदू धर्मों के विश्वासियों के बीच भी दिन-प्रतिदिन

॥ डॉ. नित्यानंद चक्रवर्ती

बंगला देश गीता संघ के अध्यक्ष, इस संघ के माध्यम से 400 से अधिक केन्द्रों पर गीता के प्रचार-प्रसार में सक्रिय योगदान, हिन्दू कल्याण ट्रस्ट के माध्यम से गीता-विद्यालय में प्रशिक्षकों को प्रशिक्षित करते हुए गीता के बहुप्रशंसित संस्करण का सम्पादन, मूलतः अर्थशास्त्री, विश्व बैंक, एशिया विकास बैंक आदि में राष्ट्रीय सलाहकार।

प्रासंगिक और प्रशंसनीय रूप में अधिक से अधिक गहराई से पहचाना जा रहा है, क्योंकि मानवता और प्राकृतिक प्रणालियों के सांसारिक संकट अधिक से अधिक जटिल होते जा रहे हैं। इसके महत्त्व को कई प्रसिद्ध और उल्लेखनीय गैर-हिंदू वैज्ञानिकों, दार्शनिकों और आइंस्टीन, हरमन हेस्से, एल्डस हक्सले, जे रॉबर्ट ओपेनहाइमर, रुडोल्फ स्टेनर आदि जैसे विश्व नेताओं द्वारा दोहराया गया है। मानवता और निरंतर ब्रह्मांडीय प्रणाली के एकीकरण के लिए अमूल्य आह्वान का प्रभाव दुनिया में हिंदू धर्म की पवित्र धार्मिक पुस्तक भगवद गीता ने भौगोलिक और धार्मिक सीमाओं से परे, दुनिया की आबादी के दिलों को छुआ है। श्रीकृष्ण के पदचिह्न अधिक से अधिक उज्ज्वल होते जा रहे हैं क्योंकि दुनिया अधिक से अधिक मानवीय और नैतिक संकटों के स्थायी समाधान की तलाश कर रही है। कई लोग अब बड़े पैमाने पर मानवता और प्रकृति के सुशासन और स्थायी कल्याण लाने के लिए गीता की सलाह का सहारा ले रहे हैं। दुनिया धीरे-धीरे विविधता से विचार की एकता की ओर बढ़ रही है, जिसकी श्रीकृष्ण ने लगभग पाँच हजार साल पहले वैश्विक समाज के लिए उद्घोषणा की थी। क्योंकि, यह एकता ईश्वर के प्रारंभिक अस्तित्व के करीब है, जहाँ से ब्रह्मांड और अन्य सभी संस्थाएँ एक वास्तविकता के रूप में उभरी हैं।

आध्यात्मिक पदचिन्हों की वैश्विक स्थिति : विचारों की एकता

इस एकता को अनेकता में और इसके विपरीत देखना अनिवार्य रूप से भगवत गीता का केंद्रीय स्वर है। आदि शंकराचार्य ने और भी जोरदार टिप्पणी की, "भगवद्-गीता वैदिक शास्त्रों की सभी शिक्षाओं का साक्षात सार है।" जो अपरिवर्तनीय आत्मा की निम्न और उच्चतर प्रकृति को जानता है उसे संसार के अस्तित्व का रहस्य आत्मबोध के रूप में प्रकट होता है, (– गीता: 7 . 4,5) । श्रीकृष्ण पूरे ब्रह्मांड की उत्पत्ति और विघटन हैं क्योंकि सब कुछ उनकी प्रकृति से उत्पन्न होता है। ये सब एक धागे पर रत्नों की एक पंक्ति के रूप में उनसे बँधे हैं (– गीता: 7.6,7) ब्रह्मांडीय चमत्कार का महान महत्त्व गीता के कुछ श्लोकों में निहित है जहाँ दुनिया में उनकी असंख्य अभिव्यक्तियों के पीछे अपरिवर्तनीय आत्मा की एक केंद्रीय 'एकता' प्रकट होती है।

विश्व जैसा है, श्रीकृष्ण की असीम अभिव्यक्तियों का एक समूह है, चाहे वह शारीरिक, मानसिक या बौद्धिक हो। उनके आभासी पदचिह्न हर जगह प्रबल हैं, जब संसार के नेता, दार्शनिक, वैज्ञानिक, नीति निर्माता, कवि, शिक्षक और धार्मिक पुजारी समस्याओं में पड़ जाते हैं तब गीता समाधान के लिए एकमात्र साधन बनती है। वे उसमें सार्थक उपाय ढूँढते हैं। फ्रांसीसी धर्मशास्त्री, डॉ. अल्बर्ट श्वित्ज़र ने टिप्पणी की– "भगवद्-गीता का मानव जाति की आत्मा पर ईश्वर के प्रति समर्पण से गहरा प्रभाव है जो कर्मों से प्रकट होता है।" (डॉ. अल्बर्ट श्वित्ज़र (1875-1965); नोबेल शांति पुरस्कार विजेता (1952) योग की दृष्टि से भी, उनसे पूर्ण एकता को चुनना एक ऐसा योगिक उपक्रम है जो योगी को हर जगह उनके पदचिन्हों को समझने में सक्षम बनाता है: एक सूक्ष्म लेकिन वास्तविक, मौन लेकिन बहने वाली, अनदेखी लेकिन आध्यात्मिक रूप से कायाकल्प करने वाली दृष्टि। दुनिया में महान आत्माएँ हमेशा इसके पीछे होती हैं: उनके उद्यम समान रूप से सूक्ष्म लेकिन वास्तविक, मौन लेकिन बहते हुए, अदृश्य लेकिन आध्यात्मिक रूप से कायाकल्प करने वाले होते हैं!

अनुवादक - डॉक्टर आशुतोष अंगिरस

o o o

ऋतंभरा

सुबह का ध्यान एक प्रकार का कवच है।
जिसके द्वारा हम दिन में होने वाली, क्रोध जगाने वाली
गतिविधियों और दुर्व्यवहार को सहजता, धैर्य और
प्रेम से बिना आहत हुए सह सकते हैं।

o

कृष्ण
चेतना और ब्रह्मांड

क्वांटम भौतिकी के सिद्धान्त के अनुसार परमाणु के भीतर प्रोटॉन और उसके चारों ओर चक्कर लगाते इलेक्ट्रॉन के बीच का स्थान खाली न होकर एक ऊर्जा से भरा हुआ है। वह ऊर्जा ब्रह्माण्डीय चेतना है। लेखक की मान्यता है कि उसी ऊर्जा का प्रलेखन गीता और भागवत में कृष्ण-चेतना के नाम से हुआ है, जो ब्रह्माण्ड का संधारण करती है।

कृष्ण-चेतना संसार की सभी वस्तुओं का और सभी प्रकार की ऊर्जाओं का परम स्रोत है। कृष्ण-चेतना का अर्थ है परम सत्य, सर्वोच्च सत्ता और वास्तविकता के साथ समरसता के अनुसार कार्य करना। कृष्ण सर्वव्यापी हैं, हर जगह मौजूद हैं; कृष्ण-चेतना और ऊर्जा सम्पूर्ण सृष्टि में प्रसारित हो रही है, प्रकाशित हो रही है। सब कुछ कृष्ण की चेतना और ऊर्जा में स्थित है। गीता के अनुसार कृष्ण-चेतना ही सभी की उत्पत्ति में स्वत: ही अंतर्निहित है एवं अपने में पूर्ण है। संसार के समस्त प्राणियों की

उत्पत्ति उस एक असीमित और अपरिमेय चैतन्य सत्ता से ही संभव हो सकी है और सभी प्रकार की भौतिक ऊर्जा की अभिव्यक्तियाँ उस चैतन्य की सचेत इच्छा और योजना की उपस्थिति, व्यवस्था और प्रदर्शन मात्र हैं।

यह चैतन्य ऊर्जा इस ब्रह्मांड के बनने से पहले भी विद्यमान थी। समस्त संसार की सारी चैतन्य शक्तियाँ, भौतिक प्रकृति और जीवों की सभी अभिव्यक्तियाँ महा-विष्णु (– गीता : 13.20) में ही अंतर्निहित हैं। वही इन सभी शक्तियों की स्थिति और अक्षय स्थान है। वह शुद्ध चैतन्य अपनी विभिन्न आंतरिक और बाहरी ऊर्जाओं के कारण ही प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष ब्रह्मांड की हर वस्तु के भीतर और साथ ही वह हर चीज से बाहर भी विद्यमान है। अंत में उसी परम चैतन्य में लीन हो जाती हैं। वह अपनी विभिन्न आंतरिक और बाहरी ऊर्जाओं के कारण प्रकट ब्रह्मांड में हर चीज के भीतर

अभिव्यक्त लौकिक या ब्रह्मांडीय ऊर्जा

लौकिक या ब्रह्मांडीय ऊर्जा वह आध्यात्मिक ऊर्जा है, जो जीवन के सभी रूपों को जीवंत करती है और संपूर्ण ब्रह्मांड के संतुलन को बनाए रखती है। चेतना और बुद्धि की यह सर्वोत्तम शक्ति हर समय एवं प्रत्येक स्थान पर मौजूद है। यह अनंत आकाशगंगाओं, विशाल और सूक्ष्म, अंतरिक्ष और परमाणुओं में अर्थात् हर जगह मौजूद है। संपूर्ण स्थूल और सूक्ष्म विश्व इस ब्रह्मांडीय ऊर्जा से भरा हुआ है। हमें अपने जीवन में संतुलन बनाए रखने के लिए इस ऊर्जा की आवश्यकता होती है और हम इसे केवल आध्यात्मिकता को गहराई तक अभ्यास करके ही अनुभव कर सकते हैं। यह ऊर्जा निरन्तर प्रवाहित होती रहती है, हालाँकि, हम इसे कितना प्राप्त करते हैं और महसूस करते हैं, यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि हम इसे कैसे प्राप्त करते हैं और हम

भी है, और साथ ही वह हर चीज से बाहर है। वह शुद्ध चैतन्य ही सभी गतिविधियों और अभिव्यक्तियों के निर्माता और नियंत्रक हैं (– गीता : 13.27)।

दूसरे शब्दों में कहें तो केवल श्रीकृष्ण ही शुद्ध और पूर्ण सत्य हैं और प्रकट एवं अप्रकट ब्रह्मांड के निर्माण, जीविका, प्रलय और विनाश के सभी कारणों का मूल कारण हैं। स्वयं में वे स्वतंत्र है; क्योंकि उनके अतिरिक्त कोई अन्य कारण नहीं है। (–भागवत : 1.1.1)। कृष्ण-चेतना का अर्थ है– उस सर्वोत्तम चैतन्य पुरुषोत्तम श्री कृष्ण के प्रति जागरूकता, अनुराग और स्नेह। यह वास्तविक योग, ज्ञान, ध्यान और आध्यात्मिकता के सभी रूपों की चरम परिणति है। वस्तुत: कृष्ण-चेतना प्रत्येक व्यक्ति की स्वाभाविक, मौलिक और आनंदमय स्थिति है।

> कृष्ण-चेतना का अर्थ है– उस सर्वोत्तम चैतन्य पुरुषोत्तम श्री कृष्ण के प्रति जागरूकता, अनुराग और स्नेह। यह वास्तविक योग, ज्ञान, ध्यान और आध्यात्मिकता के सभी रूपों की चरम परिणति है। वस्तुत:, कृष्ण-चेतना प्रत्येक व्यक्ति की स्वाभाविक, मौलिक और आनंदमय स्थिति है।

ब्रह्मांड के साथ अपना जुड़ाव और संबंध कैसे बनाते हैं। यह शुद्ध चेतना हमारे मन, आस्था और विचारों से पूर्णत: सुपरिचित है। हम अपनी वैयक्तिक नकारात्मक अहंकार को नियंत्रित एवं ज्ञान द्वारा स्व को शुद्ध करके और मन को संयमित करके इस शुद्ध चेतना का अनुभव

शुद्ध चैतन्य की अपनी ही ऊर्जा है। यह ऊर्जा का सबसे शुद्ध, स्वास्थ्यप्रद, सबसे सूक्ष्म और सबसे अधिक केंद्रित रूप है जो पूरे ब्रह्मांड या सृष्टि को अपने भीतर समेटे हुए है, और उसका आधार है।

प्राचीन भारतीय आध्यात्मिक ग्रंथ इस ईथर अथवा आकाश में उपस्थित इस शुद्ध चैतन्य को ब्रह्मांडीय ऊर्जा कणों के रूप में प्रकट करता है। आधुनिक युग के वैज्ञानिकों का मानना था कि प्रत्येक परमाणु में अधिकांश स्थान खाली होता है। हालाँकि, क्वांटम भौतिकी में प्रगति के साथ वैज्ञानिकों ने अब यह भी महसूस किया है कि परमाणु के अंदर की खाली जगह वास्तव में खाली नहीं है और जो पहले खाली जगह मानी जाती थी; उसके अंदर विद्युत-चुंबकीय तरंगें (Electromagnetic waves) होती हैं। इस विद्युत-चुंबकीय ऊर्जा को ही ब्रह्मांडीय चैतन्य भी कहा जाता है। प्रत्येक परमाणु के अंदर ब्रह्मांडीय चेतना के कण भरे होते हैं। इसलिए, संपूर्ण ब्रह्मांड इस ब्रह्मांडीय चैतन्य से बना है। इन ब्रह्मांडीय या आलौकिक चैतन्य कणों को इंद्रियों द्वारा देखा या महसूस नहीं किया जा सकता है। हालाँकि, इस ग्रह पर मौजूद हर वस्तु – मनुष्य, जानवर, पौधे, जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी आदि सभी अनिवार्य रूप से इन ब्रह्मांडीय चैतन्य कणों से बने हैं।

शोधकर्ताओं ने अब हमारे ब्रह्मांड की होलोग्राफिक प्रकृति की खोज के लिए प्रोटॉन का अध्ययन किया है और यह प्रमाणित किया कि सब कुछ जुड़ा हुआ है। क्वांटम परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में, हम यह कह सकते हैं कि शरीर परिस्थितियों का एक संग्रह नहीं हैं, बल्कि हम शुद्ध चैतन्य की अपरिमित अभिव्यक्ति हैं जो एक 'इंटरकनेक्टेड होलोग्राफिक मल्टीवर्स' में मौजूद हैं। इसमें हर विकल्प के साथ एक समानांतर ब्रह्मांड से दूसरे ब्रह्मांड में प्रवाहित हो रहे हैं।

कंप्यूटर वैज्ञानिक और 'द सिम्युलेटेड मल्टीवर्स' के लेखक रिजवान विर्क के अनुसार, जीवन एक अनुरूपित कृत्रिम वास्तविकता (simulated reality) है। जो बाहरी स्रोत द्वारा संचालित है और प्रत्येक जीव की वास्तविकता है। भविष्य में, उन्नत प्रौद्योगिकियाँ अस्तित्व की प्रकृति की खोज में सुविधा प्रदान करेंगी और इस प्रकार 'सिमुलेशन' बिंदु तक पहुँचने में मदद कर सकती हैं जहाँ हम मल्टीवर्स और उससे परे संभावनाओं की खोज करके अपनी खुद की अति यथार्थवादी वास्तविकताओं का निर्माण करने में सक्षम होंगे।

'प्रकाश' के रूप में यह चैतन्य भी ज्वलंत और अत्याधुनिक जानकारी प्रदान करती है जहाँ हम भौतिक शरीर के साथ ऑरिक क्षेत्र (Auric area) के कामकाज के दृश्य प्रदर्शन देख सकते हैं। यह स्वप्रकाशित चैतन्य हमारी समझ और जानने की गतिशीलता को बदल देती है; क्योंकि बीमारी की स्थिति में या अन्य उथल-पुथल एवं हमारे विचारों और भौतिक शरीर में प्रकट होने से पहले जीव की सीमित ऊर्जा क्षेत्र में अभिव्यक्त होती है।

इस प्रकाश चैतन्य के प्रभा मण्डल में प्राथमिक रंग और उसके बाद के रंग भी शामिल हैं, जो मानव से लेकर अन्य प्राणियों के बीच प्रकट होते रहते हैं। हम कह सकते हैं कि जीवों के बीच ऊर्जा का आदान-प्रदान होता रहता है। इनमें हमारी चेतना के क्षेत्र को प्रभावित करने वाली समस्त गतिविधियाँ भी शामिल हैं। ब्रह्मांड शुद्ध चैतन्य का एक प्रवाह है; जहाँ चैतन्य के प्रत्येक बिंदु में संपूर्ण सृष्टि समाहित है। हमारे अस्तित्व में सब कुछ सार्वभौमिक शक्ति की परस्पर क्रिया के परिणाम स्वरूप बना है जो लगातार विभिन्न प्रभाव पैदा कर रही हैं, जिन्हें हम वास्तविकता के रूप में देखते हैं। प्राचीन ग्रंथ हमें बताते हैं कि प्रत्येक जीव एक गूढ़ जाल से जुड़ा हुआ है जो काल (Time)और स्थान (Place) को चैतन्य से जोड़ता है; यानी सभी चीजों को जोड़ने वाली चेतना का एक रहस्यमय क्षेत्र है। यह एक अदृश्य शक्ति या विचार-रूप है जो मनुष्यों के दिमाग में हेर-फेर करता है। यह सामूहिक चेतना एक रहस्यमयी रूप में प्रकट हो सकती है। जो विश्वास को प्रकट करती है।

मुझे लगता है कि हमारी वर्तमान समयरेखा में 'एग्रेगोर' (Egrogor) ऊर्जा द्वारा नियंत्रित होने से बचने की कुंजी आंतरिक जागृति के मार्ग का अनुसरण करना और अपनी आंतरिक शक्ति के प्रति जागरूकता को विकसित करना है। संक्षेप में, यह सर्वोच्च रूप है, जो परोक्ष रूप से इस ब्रह्मांडीय अभिव्यक्ति का कारण है और प्रत्यक्ष रूप से आध्यात्मिक दुनिया का कारण है। श्रीमद्-भागवत में कहा गया है कि संपूर्ण ब्रह्मांडीय अभिव्यक्ति केवल सर्वोत्तम शुद्ध चैतन्य का ही विस्तार है। "भगवान का सर्वोच्च भगवद्-व्यक्तित्व स्वयं यह ब्रह्मांड है, और फिर भी, भगवान इससे अलग हैं। उनसे केवल यह ब्रह्मांडीय अभिव्यक्ति यानी कि हमारी सृष्टि निकली है जो उनमें निहित है, और वे विनाश के बाद प्रवेश करते हैं ।" (– भागवत : 1.5.20)

चेतना और कृष्ण का संबंध

अंतत: सब कुछ सर्वव्यापी, अविभाजित सर्वोत्तम कृष्ण का हिस्सा है; कुल मिलाकर कहें तो, यह केवल स्वयं कृष्ण का ही सर्वोत्तम व्यक्तित्व है। उनकी आंतरिक ऊर्जा, सीमांत ऊर्जा, और उनकी बाहरी ऊर्जा की अभिव्यक्ति मात्र है, जिसके परिणामस्वरूप स्वयं-रूप और वैभव-प्रकाश जैसे रूपों का विस्तार होता है जो सदा ही आध्यात्मिक होता है। फिर कोई बाहरी या आंतरिक नहीं होता। बस, वैभव-प्रकाश जैसे रूपों का विस्तार होता है वह भी वास्तव में कृष्ण रूपी शुद्ध चैतन्य की मात्र अभिव्यक्ति है। सभी भौतिक ग्रह और वस्तुएँ पदार्थ के अँधेरे में स्थित हैं, लेकिन उस शुद्ध चैतन्य के राज्य के आध्यात्मिक ग्रह असीमित, दिव्य प्रकाश-ब्रह्म-ज्योति, कृष्ण के व्यक्तिगत रूप की चमक में स्थित हैं। हम सभी हर तरह से पूर्ण हैं क्योंकि हम ईश्वरीय चैतन्य का हिस्सा हैं और उससे बने हैं।

हम सभी शक्तिशाली, प्रेम, स्वास्थ्य, जीवन शक्ति, आनंद, आंतरिक आनंद, शुद्ध चेतना, जागरूकता और सकारात्मकता से भरे हुए हैं। प्रकृति में हर चीज का एक उद्देश्य होता है, हालांकि, हम भूल गए हैं कि हम वास्तव में कौन हैं! हमें जीवन के उच्चतम उद्देश्यों में से यह सदा ही स्मरण रखना है कि हम वास्तव में कौन हैं! हमें वह सब कुछ छोड़ देना होगा जो हम नहीं हैं। इस प्रकार जब हम आध्यात्मिक स्तर पर उठते हैं और सार्वभौमिक शुद्ध चैतन्य से जुड़ते हैं, तो सभी समस्याएँ आसानी से हल हो जाती हैं। हम स्थायी शांति और आनंद प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे मंदिर और अन्य पूजा स्थल हैं जिनके बारे में माना जाता है कि वे विद्युत चुम्बकीय गर्भनाल से ब्रह्मांड के दूर के हिस्सों से जुड़े हुए हैं। अलग-अलग परंपराएँ उस शुद्ध चैतन्य को अलग-अलग नाम दे सकती हैं, लेकिन उन सभी में हम परमात्मा के साथ एक होने की एक ही इच्छा पाते हैं। हालांकि, चेतना के विविध स्तरों के कारण, प्राणी प्रकृति के साथ अलग तरह से बातचीत करते हैं और ब्रह्मांड के विभिन्न स्तरों के अनुभव प्राप्त करते हैं। शुद्ध चैतन्य की अनुभूति की इस यात्रा का अर्थ है एक उच्च स्तर की जागरूकता और चेतना को प्राप्त करने के पथ पर आगे बढ़ना, जहाँ सभी चीजें परस्पर जुड़ी हुई हैं। जहाँ मन स्वयं और अहंकार की जागरूकता से ऊपर उठ जाता है। ब्रह्मांड के साथ एकत्व के अनुभूति करता है और अनंत में समरसता पाता है। दूसरे शब्दों में, मूल उद्देश्य यह समझना और महसूस करना है कि हम प्रकृति की एक बड़ी प्रक्रिया का केवल एक हिस्सा हैं और हमारे सभी कार्य

शुद्ध चैतन्य की अनुभूति के प्रवाह के अनुरूप होने चाहिए या शुद्ध चैतन्य के अनुसार कार्यरत होने चाहिए। इस प्रकार की अनुभूति के लिए एक नई आस्था की परिकल्पना की भी आवश्यकता है, जिसमें विवेकपूर्ण तर्क को अस्वीकार करना, मन का हस्तक्षेप और भेदभाव करने की निंदा के साथ-साथ मन और क्षुद्र विचारों के विस्मरण और उपवास का परिणाम ब्रह्मांड के साथ संयुक्तता और एकत्व में होगा। अवचेतन और अस्तित्वगत या स्वयं और दूसरों के साथ सचेत और चिंतनशील जुड़ाव अंततः, हमारी लौकिक पहचान को आकार देगा।

ब्रह्म-संहिता के अनुसार, यदि व्यक्ति ने सर्वोच्च के प्रति पारलौकिक प्रेमपूर्ण रवैया विकसित किया है, तो वह हमेशा अपने भीतर और बाहर गोविंद की दिव्य उपस्थिति देख सकता है। ब्रह्मांड अनादि और अनंत है, बल्कि यह स्वयंभू और आत्म-प्रकाशमान (स्वयंप्रकाश) है और सर्वोच्च (भगवान) का अनंत मिलन है।

ऐसे में संपूर्ण एकीकृत ब्रह्मांड की अनुभूति हो सकती है। यद्यपि कृष्ण सर्वव्यापी हैं, सर्वत्र विद्यमान हैं, परन्तु यह अवश्य है कि वे भौतिक इन्द्रियों द्वारा बोधगम्य नहीं हैं। भगवान कृष्ण की चेतना पूरी सृष्टि में फैली हुई है, और सब कुछ उस चैतन्य में स्थित है। “यद्यपि मैं सभी जीवों का पालनकर्ता हूं, और मैं हर जगह हूँ, फिर भी मेरी आत्मा ही सृष्टि का स्रोत है” (– गीता : 9.5) । ब्रह्मांडीय अभिव्यक्ति अंतरिक्ष में टिकी हुई है; सभी सूर्य, चंद्रमा और ग्रह अंतरिक्ष में घूम रहे हैं; आकाश भी अंतरिक्ष के भीतर है और यह स्थान भी सर्वोच्च की अभिव्यक्ति है। कृष्ण में ही सभी पदार्थ या ‘ब्रह्मांडीय पदार्थ’ सहित सब कुछ विद्यमान है और वे सभी कृष्ण की सर्वोच्च इच्छा से परस्पर जुड़े हुए हैं। और वे सभी उस सर्वोच्च इच्छा के अधीन हैं। फिर भी कृष्ण (परमात्मा) न्यारे हैं और उनसे पृथक हैं। “जिस प्रकार हर जगह बहनेवाली शक्तिशाली हवा, हमेशा परलौकिकता में विश्राम करती है, यह जान लें कि उसी तरह सभी प्राणी मुझ में विश्राम करते हैं” (– गीता : 9.6)। उस सर्वोच्च चैतन्य सत्ता के दृश्य एवं अदृश्य रूप में अनंत ब्रह्मांड शामिल हैं।

निष्कर्ष

शुद्ध चैतन्य की अनुभूति अपने आप में अद्वितीय है एवं इसे केवल अनुभव ही किया जा सकता है। भाषा या शब्दों में कोई भी उसके स्वभाव या गुण को पर्याप्त रूप से अभिव्यक्त नहीं कर सकता है। यह विचार और शब्द से परे है; “यतो वाचो निवर्त्यन्ते अप्राप्य मनसा सह।” अद्वैतवादी, विचार धारा के अनुसार, व्यक्तिगत चैतन्य और शुद्ध चैतन्य के एकत्व की अनुभूति हमारे जीवन का श्रेष्ठतम लक्ष्य है। इस परम चैतन्य के साथ अपनी अभिन्नता को महसूस करना और उसमें वापस विलय करना जीवन का ध्येय है । यह वह मंज़िल है जहाँ शुद्ध चैतन्य ही एकमात्र वास्तविकता है और आत्मा और शुद्ध चैतन्य के बीच कोई अलगाव नहीं है। जबकि, द्वैतवादी विचार धारा के अनुसार यह मान्यता है कि आत्मा और शुद्ध चैतन्य अलग, अलग हैं, और शुद्ध चैतन्य का एक निश्चित रूप और व्यक्तित्व है। वह एक अविभाजित पूर्णता है, जिसमें सभी वस्तुएं और व्यक्ति परस्पर संपृक्त हैं। यह शुद्ध चैतन्य एक ब्रह्मांडीय संपत्ति है जहाँ सर्वोच्च चेतना और ब्रह्म समान हैं। वे सृष्टि के प्रत्येक परमाणु में मौजूद हैं और जो कुछ भी मौजूद है वह सब कुछ उस शुद्ध चैतन्य की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार, ब्रह्म ज्ञान का सार सृष्टि के प्रत्येक पहलू में दिव्य उपस्थिति के बारे में जागरूकता है। यह निरंतर दृष्टि जीवन के हर पहलू में व्याप्त होनी चाहिए।

कृष्ण चेतनता किसी के व्यक्तिगत विश्वास या आस्था पर निर्भर नहीं करती, इसे कोई भी अनुभव कर सकता है। यह कृष्ण के साथ एक अटूट अभेद्य संबंध बनाती है, जो पूरे जीवन को उत्प्रेरित और ऊर्जित करती है। जीवन को पूर्णता प्रदान करती है। कृष्ण का यह शुद्ध चैतन्य स्वरूप किसी की व्यक्तिगत आस्था पर निर्भर नहीं है बल्कि कोई भी मनुष्य कृष्ण चेतना की अनुभूति कर सकता है। इस तरह कृष्ण के साथ संबंध और आनंदमय जुड़ाव को फिर से जीवंत और पुनर्जीवित कर सकता है।

अनुवादक - आदित्य अंगिरस

o o o

|| प्रो. डॉ. अविनाश कपूर

भारतीय खगोल शास्त्र एवं अध्यात्म के लेखक तथा शोधकर्ता, विपणन के प्रोफेसर, एवं उद्योग सम्पर्क के डीन, एम .डी. आई, गुड़गाँव।

सूक्ष्म से विराट-कृष्ण

श्रीकृष्ण सोलह कलाओं से पूर्ण हैं। अतः, उनमें लघिमा और गरिमा की सिद्धियाँ भी हैं। उनकी गरिमा ऐसी है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उनमें समा जाए। कृष्ण ने अपने विराट् स्वरूप का दर्शन चार अवसरों पर कराया है। आइए हम भी यह दर्शन करें...

o o o

ॐ कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणतः क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः।।

श्रीकृष्ण जितने अलौकिक, अतिमानवीय और आश्चर्यजनक रूप से विराट हैं, उतने ही सामान्य लोक में रचे-पगे लघुता, सरलता और सहजता को स्वीकार करने में भी अतुलनीय हैं। सूक्ष्म से विराट तक की ऐसी व्याप्ति वाले लोकनायक का कोई और उदाहरण खोजे नहीं मिलता है। पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की लीलाएँ हमारे सामने सूक्ष्म और विराट की अनोखी आँख-मिचौली करती हैं जिसके चुम्बकीय आकर्षण में खिंचे बिना कोई बच नहीं सकता। जन्म से लेकर बाल्यावस्था, कैशोर्य, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था से होते हुए लीला-संवरण तक का समग्र कृष्ण-चरित हज़ारों वर्षों से अनगिनत सहज कौतूहलों का आश्रय बना हुआ है। यह मोहक और आकर्षक युग-स्वप्न एक जादू की तरह परिपूर्णता की कसौटी बन कर हमारे सामने उपस्थित है। पूर्ण तो सर्वसमावेशी होना ही चाहिए, तभी तो वह पूर्ण हो सकेगा। यदि विविध तत्व, वे सब भी जो परस्पर विरुद्ध हों, उस रचना में न समा सकें तो फिर पूर्णता कैसे आएगी? सबको सम्मोहित करने वाले पूर्णावतार श्रीकृष्ण उन तमाम प्रकट अंतर्विरोधों के बीच भी अविचल और अच्युत बने रहते हैं । वे मर्यादाओं का निर्वाह करते हैं, उन्हें तोड़ते हैं, और बड़ी मर्यादा बनाते हैं और फिर उसका भी अतिक्रमण करते हैं। उन्हें कभी कहीं किसी तरह का विराम नहीं है। श्रीकृष्ण विचार और कर्म की दुनिया में एक क्रांति ले आते हैं और धर्ममूलक संस्कृति की स्थापना के लिए एक गत्यात्मक प्रतिमान उपस्थित करते हैं। ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य और मोक्ष जैसे गुणों के समन्वय के साथ श्रीकृष्ण को भगवान कहा जाना स्वाभाविक है।

सच कहें तो दिव्य जन्म और कर्म वाले श्रीकृष्ण अखंड जीवन की साधना के निकष के रूप में आते हैं। अक्सर देवता अनोखे होते हैं पर श्रीकृष्ण एक ऐसे देव हैं जो लगातार मनुष्य बनने में संलग्न हैं। निर्लिप्त भोगी, त्यागी और योगी के रूप में वे असम्भव से कार्य करते रहते हैं। उनकी भूमिकाएँ अपनी अछोर विस्तृति से चमत्कृत करती हैं। यदि वे आकाश के देवता की जगह धरती के देवता की प्रतिष्ठा करते हैं तो युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आगंतुक ब्राह्मणों के पैर धुलाने और जूठी पत्तल बटोरने का काम भी प्रेम और प्रसन्नता के साथ करते हैं। कृष्ण का पूरा जीवन ही नाना प्रकार के सुखों-दुखों के बीच समत्व के योग और स्थितप्रज्ञ के शिखर की राह पर अपने को आगे ले

चलने वाला उद्यम लगता है। कारागार में जन्म, दूसरे के घर में शैशव, बाल्यावस्था से ही शत्रुओं के आक्रमण का निरंतर प्रतिकार, प्रिय जनों को छोड़कर भी अपना आत्म-बल बनाए रखना, लोक-हित के लिए किसी भी सत्ता से टकराने की शक्ति और जन-सेवा की तत्परता, सबको जोड़ते रहने की प्रवृत्ति, सबको यथायोग्य आदर देने के साथ व्यापक जन जीवन के बीच लोक के साथ जुड़ने जैसे बहु आयामी कार्य करने का सामर्थ्य अकेले सिर्फ़ श्रीकृष्ण में ही दिखाई पड़ती है। लोक में रमते हुए कृष्ण लोकोत्तर गुणों के आगार हैं। अपनी अद्भुत एवं चमत्कारपूर्ण लीलाओं, प्रिय जनों के माधुर्यपूरित प्रेम से मंडित, मधुर मुरली की तान से तीनों लोकों के निवासियों को आकर्षित करनेवाले और असाधारण रूप लावण्य के स्वामी श्रीकृष्ण भागवत धर्म के ऐसे उपदेष्टा हैं जिनकी चरण धूलि को पाने वाले स्वर्गादि कुछ भी नहीं चाहते, उनको मोक्ष पाने की भी इच्छा नहीं होती।

पूर्णावतार श्रीकृष्ण में सत्, चित् और आनंद तीनों की लीलाएँ प्रकट हुई हैं जो ज्ञान, कर्म और भक्ति की त्रिवेणी रचती रहती हैं । वे मानुषतनु धारी नारायण योगेश्वरेश्वर हैं । योग की शक्ति से स्थूल और सूक्ष्म शरीर धारण करना सम्भव हो जाता है क्योंकि तपश्चर्या से 'जीवनमुक्त' की स्थिति में होने के कारण वे सामान्य भौतिक बंधनों से नहीं बंधते। श्री कृष्ण निर्लिप्त, जितेंद्रिय और परम ज्ञानी हैं । वे जाने कितनों से किन-किन परिस्थितियों में जुड़े पर निस्संग भाव से। श्रीमद्भागवत में बड़े ही सुंदर ढंग से यह बात कही गयी है– 'जिनके चरण कमल के प्रभाव से योगी लोग कर्म के बंधन से मुक्त हो कर संसार को पवित्र करते हुए विचरण करते हैं, केवल माया से शरीर धारण करने वाले उस निराकार परमात्मा को बंधन कैसे लग सकता है?'

यत्पादपंकजपराग निषेवतृप्ता
योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः।
स्वैरं चरंति मुनयोपि न नह्यमाना–
स्तस्येच्छयात्तवपुषः कुत एवं बन्धः।।

कृष्ण अपनी दिव्य प्रकृति को स्पष्ट करते हुए गीता में कहते हैं कि 'यद्यपि मैं अजन्मा और अविनाशी आत्मा और सर्वभूतों का ईश्वर हूँ, तथापि मैं अपनी प्रकृति को वश में कर के अपनी ही शक्ति से जन्म ग्रहण करता हूं'

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधीष्ठाय संभवाम्यात्ममायया।।

जब हम श्रीकृष्ण को लोक-यात्रा में आने वाली चुनौतियों का सामना करते हुए देखते हैं तो हमें अनेक अवसरों पर उनकी सूक्ष्म से विराट की अभिव्यक्ति मिलती है। लीलाओं के प्रसंग में उनके विराट स्वरूप के दर्शन का मुख्य रूप से चार अवसरों पर उल्लेख मिलता है। श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के आठवें अध्याय में पहला अवसर वर्णित है। शैशव में श्रीकृष्ण खेलकूद में मिट्टी खा गए और उनके बालसखा गण माता यशोदा के पास पहुँच कर यह बात बताते हैं। माँ से श्रीकृष्ण को डाँट पड़ी तो वे बोल उठे, "माँ मैंने मिट्टी नहीं खाई, ये लोग तो झूठ बोल रहे हैं, चाहो तो मेरा मुंह देख लो"। श्रीकृष्ण ने यह कह कर अपना मुंह खोल दिया। फिर यशोदा माँ ने जो देखा तो उनका सिर चकरा गया। कृष्ण के मुंह में सारी की सारी सृष्टि ही उपस्थित थी, वहाँ आकाश, पर्वत, वायु, अग्नि, समुद्र, सूर्य, चंद्रमा आदि सभी थे। वे सोचने लगीं कि यह सपना है या परमात्मा की माया? उनका भ्रम टूटा और यह बात समझ में आई कि जिसे मैं अपना शिशु मान रही थी वह अगम, अगोचर परमात्मा का ही स्वरूप है। यह वह है जिस पर सारा विश्व टिका है, जो सबका अधिष्ठाता है। उन्होंने प्रणाम करते हुए कहा 'हे जगन्नाथ मैं शरणागत हूँ'। श्रीकृष्ण ने यह भाँप कर कि वात्सल्य की लीला में बाधा पड़ेगी अपना विश्वरूप समेट लिया और फिर पहले जैसी माया फैला दी। माता का प्रेम उमड़ पड़ा, वे कृष्ण को गोद में ले कर उनका मुख चूमने लगीं।

दूसरा प्रसंग तब का है जब श्रीकृष्ण दूत के रूप में कौरवों के पास हस्तिनापुर जाते हैं। यह महाभारत के उद्योग पर्व में अध्याय 130-131 में वर्णित है। श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को खूब समझाया पर वह नहीं माना उसने उल्टे उन्हें क़ैद करना चाहा। तब धृतराष्ट्र ने उसे रोका और विदुर ने चेताया कि तुम जान नहीं रहे हो कि श्रीकृष्ण कौन हैं और उसे श्रीकृष्ण के स्वरूप का वर्णन कर समझाया। तब श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से कहा, "तू अपनी मूर्खता से मुझे अकेला समझ रहा है पर यहाँ सारे पांडव, यदुकुल, सूर्य, रुद्र, वसु, ब्रह्मा, देवता, महर्षि सभी उपस्थित हैं।" फिर वे हंसे और तभी उनके सभी अंगों में ब्रह्मा आदि देवता छोटे-छोटे आकार में दिखने लगे जो बड़े होते गए, मुख से अग्नि, भुजाओं में आदित्य, इंद्रादि देवता दिखने लगे। रोम कूपों से सूर्य की किरणें निकलने लगीं। भीष्म, विदुर, संजय आदि ने यह दृश्य देखा। धृतराष्ट्र को भगवान ने दृष्टि दी और तब उन्होंने भी देखा। इस तरह भक्तों को आनंद और दुष्टों को भय देकर भगवान श्रीकृष्ण दुर्योधन की राज सभा से चल दिए।

तीसरा प्रसंग कुरुक्षेत्र में श्रीमदभगवद्गीता के उपदेश के बीच का है जिसमें श्रीकृष्ण अर्जुन को अपना विराट रूप दिखाते हैं। गीता के 11 वें अध्याय में इसका वर्णन है। श्रीकृष्ण कहते हैं– 'हे अर्जुन। तुम मेरे सैकड़ों-सहस्रों दिव्य रूपों को जो अनेक प्रकार और अनेक आकृतियों के हैं देखो, आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत को देखो, एकत्व में स्थित चराचर जगत को देखो। तुम अपनी सामान्य आँख से इन्हें नहीं देख सकते। मैं तुम्हें दिव्य चक्षु देता हूँ। फिर उन्होंने दिव्य चक्षु देकर अर्जुन को अपना विश्व रूप दिखलाया तब लगा मानों हज़ारों सूर्य एक साथ उग आए हों और उससे प्रकाश उपजा हो। विस्मयाभिभूत अर्जुन ने श्रीकृष्ण को मुकुट, गदा, चक्र युक्त तथा चारों ओर प्रकाशित तेज राशि के साथ देखा । वह कह उठे, "सूर्य और अग्नि के समान आप की ज्योति की ओर देखना कठिन है, आप अप्रमेय अर्थात् मन बुद्धि से परे हैं"–

किरीटिनं गदिनं चक्रिणम् च
तेजो राशिं सर्वतो दीप्तिमन्तम्।
पश्यामि त्वाम् दुर्निरीक्ष्यम् समन्ता
द्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम्।

यह वर्णन अत्यंत विस्तृत है, इसमें सौम्य और फिर विकराल दोनों रूपों का वर्णन है जिसमें महाभारत का पूरा युद्ध भी सम्मिलित है। उस समय अर्जुन डर कर पूछता है, "आप कौन हैं?" तो कृष्ण का उत्तर मिलता है, "मैं काल हूँ और लोक का क्षय करना ही मेरा प्रयोजन है। तुम्हारे प्रतिपक्ष के योद्धा तुम्हारे बिना भी जीवित न रहेंगे"। उसके बाद श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं "निमित्त मात्रं भव सव्यसाचिन्।" तत्पश्चात् अर्जुन स्तुति करते हैं–

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेदयं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप।।

'आप आदि देव हैं; आप सनातन पुरुष हैं; आप इस विश्व के परम आधार हैं; वस्तुतः आप ही ज्ञाता हैं तथा आप ही ज्ञेय हैं। आप सबसे परे परम पद हैं। आप ही अनंत रूपों वाले ब्रह्म हैं! आप सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं'।

अर्जुन श्रीकृष्ण का सौम्य रूप देखना चाहते हैं। तब श्रीकृष्ण कहते हैं, "योगमाया से मैंने तुम्हें अनंत विश्व रूप दिखलाया। इसे आज तक किसी ने नहीं देखा है"। उसके पश्चात उन्होंने अपना सौम्य रूप दिखाया। श्रीकृष्ण कहते हैं कि अनन्य भक्ति से ही मेरा यह रूप देखा जा सकता है, भक्त ही मुझे इस रूप में जान पाता है, तत्वतः देख पाता है, और उसमें प्रवेश कर पाता है अर्थात् मुझ परम ब्रह्म से अभिन्न हो जाता है।

> पूर्णता की यात्रा का सोपान बनी कृष्ण की गाथा दान, दक्षता, विद्या, वीरता, विनय, धैर्य, संतोष और दूसरों के भरण-पोषण की क्षमता जैसे मानवीय गुणों का कीर्तिमान स्थापित करती है। लोक पुरुष श्रीकृष्ण ने निषेध, अपमान, राज-मद, दर्प और अहंकार का सतत प्रतिकार करते हुए अपने युग को नए युग में ढाला।

चौथा प्रसंग महाभारत के आश्वलायन पर्व के अध्याय 55 में आता है। महाभारत युद्ध के समापन के बाद पांडवों ने अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ पूर्ण होने के बाद कृष्ण पांडवों से विदा लेकर द्वारका लौट रहे थे। रास्ते में उन्हें उत्तंक मुनि मिले। श्रीकृष्ण ने उनका आदर किया। मुनि ने पूछा कि हे कृष्ण। आप कौरवों के पास गए थे तो क्या हुआ? श्रीकृष्ण ने सारी कथा सुनाई और कहा कि युद्ध में सभी खेत रहे केवल पांडव बचे हैं। मुनि ने कहा, "आप चाहते तो कुरु कुल के विनाश को रोक सकते थे, मैं आपको शाप दूँगा"। श्रीकृष्ण उन्हें समझाते हैं।

॥ डॉ. गिरीश्वर मिश्र

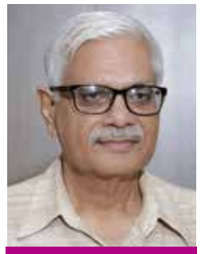

एक मनोविद, विचारक एवं संस्कृति के अध्येता प्रो. गिरीश्वर मिश्र हिन्दी साहित्य के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। श्री मिश्र की लिखित एवं संपादित अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं। पांच दशकों से शैक्षिक जीवन में, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलपति पद से सेवानिवृत्त हुए। पत्र-पत्रिकाओं में नियमित स्वतंत्र लेखन। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

कृष्ण की बात सुन मुनि अध्यात्म तत्व जानने की इच्छा जताते हैं। श्रीकृष्ण मुनि को विस्तार से अध्यात्म तत्व का ज्ञान देते हैं। मुनि कृष्ण से ऐश्वर रूप दिखाने को कहते हैं। तब श्रीकृष्ण अपना विराट रूप दिखलाते हैं। उसे देख मुनि आश्चर्य में पड़ गए, फिर शाश्वत रूप दिखाने को कहते हैं, तब श्रीकृष्ण अपना सौम्य रूप दिखाते हैं।

श्रीकृष्ण के उपर्युक्त आख्यान और इसी तरह की अनेकानेक घटनाएँ भारतीय लोक-मानस में निरंतर गूँज रही हैं। यशोदानंदन, गोपाल, गोविंद, गिरिधर, गोपीकृष्ण, बंशीधर, सुदर्शनधारी, पार्थसारथी आदि के विभिन्न रूपों में की गयी प्रत्येक लीला मन में कुछ इस तरह बैठ गई है कि अलौकिक लगती ही नहीं क्योंकि वह लीला है, खेल है। वैसे भी मनुष्य अपनी शारीरिक सीमा का अतिक्रमण करना चाहता है और करता भी है। श्रीकृष्ण एकाग्र संलग्नता वाले मन की उत्कट उछाल के साथ यही करते हैं ।

श्रीकृष्ण इस अर्थ में अलौकिक और असाधारण हैं कि एक ओर उनकी उपस्थिति प्रत्येक देही में जीवात्मा के रूप में विद्यमान है तो दूसरी ओर परमात्मा के रूप में उनकी सत्ता सर्वव्यापी है। एक सूक्ष्म रूप में है तो दूसरी विराट रूप में जहाँ सूक्ष्म रूप में देही का प्रकृति के गुणों के साथ बन्धन सीमित अस्तित्व को कर्तापन के भ्रम से प्रवृत्ति की ओर ले जाता है और क्लेशों का अनुभव होता है। पर इस संकुचित बोध से जो सीमा बनी रहती है योग के अभ्यास और वैराग्य (अनासक्ति) का आश्रय लेकर यदि प्रकृति की ओर के आकर्षणों से मुक्ति मिलती है तो क्लेशों से निवृत्ति संभव है । जीवात्मा परमेश्वर की ओर अभिमुख हो कर अपने स्वाभाविक स्वरूप में स्थित हो सकता है। पूरी श्रीमद्भगवतगीता इसी स्वरूप चेतना को स्थापित करने के उपक्रम में सांख्य, ज्ञान, कर्म और भक्ति आदि विभिन्न प्रकार के योग की विधियों की व्याख्या प्रस्तुत करती है जो मनुष्य के संस्कार और पूर्व जन्म के प्रभावों (वासनाओं) के अनुरूप हो ।

कृष्ण-तत्त्व विलक्षण सक्रियता के साथ लोभ, मोह, ईर्ष्या, भय की सारी सीमाओं को तोड़ता-फलाँगता मुक्त करता विराट तक पहुँचा देता है। माता-पिता, घर-बार, प्रेमी (भक्त)-प्रेमिकाएँ कहीं कोई एकल सत्ता का प्रभुत्व नहीं दिखाती और पर को अपर, अन्य को स्वकीय, एक से अनेक, सूक्ष्म से विराट की ओर अग्रसर घटनाक्रमों वाली लीला पराए को सुखी करनेवाली और अपने से ज़्यादा महत्व देने वाली है। पूर्णता की यात्रा का सोपान बनी कृष्ण की गाथा दान, दक्षता, विद्या, वीरता, विनय, धैर्य, संतोष और दूसरों के भरण-पोषण की क्षमता जैसे मानवीय गुणों का कीर्तिमान स्थापित करती है। लोक पुरुष श्रीकृष्ण ने निषेध, अपमान, राज-मद, दर्प और अहंकार का सतत प्रतिकार करते हुए अपने युग को नए युग में ढाला। उनकी लीला में लघुता विराटता का ही एक दूसरा रूप होती है। श्रीकृष्ण सर्वात्मा हैं– वासुदेव: सर्वम् और विभक्त बँटी हुई चीजों में जो एक सूत्रता है उसे देखने वाली दृष्टि है– 'अविभक्तं विभक्तेषु' इसके प्रवक्ता हैं। वह सभी प्राणियों में एक अव्यय भाव देखते हैं– "सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।" इस कृष्ण भाव की कामना सूक्ष्मता में विराटता का दर्शन कराती है।

o o o

Love and Blessings to

KRISHN PRAGYA

Hare Krishna Hare Krishna Krishna Krishna Hare Hare,

Hare Rama Hare Rama Rama Rama Hare Hare.

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण हरे हरे।

हरे राम हरे राम, राम-राम हरे हरे।

His Divine Grace

A. C. Bhaktivedanta Swami Prabhupada

Founder - Acharya of ISKCON

Courtesy - Shri Chandrakant Vidyarthi

ब्रह्मांड नायक कृष्ण

श्रीकृष्ण ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, किन्तु दार्शनिक विचारधाराओं के प्रसार से उन्हें निर्गुण परमतत्त्व परब्रह्म के रूप में स्थापित कर दिया। पुराणों में ब्रह्मवैवर्त कृष्णचरित का वर्णन करने वाला नवीन पुराण है, किन्तु उपर्युक्त कार्य में इसने बड़ी भूमिका निभायी। इस पुराण के कृष्ण ब्रह्माण्ड के अधिनायक बन गये। उनका स्वरूप यहाँ जानने का प्रयास करें।

भगवान् श्रीकृष्ण के विराट् व्यक्तित्व का बखान करने के लिए दो ही प्रमाणिक ग्रंथ हैं, जो उनके समकालीन लेखक श्री वेदव्यासजी ने लिखे थे। इनमें पहला महाभारत और दूसरा श्रीमद् भागवत पुराण। भगवान् श्रीकृष्ण के विराट् ब्रह्म व्यक्तित्व को जानने के लिए तीसरे ग्रंथ बृहद् मार्ग के दसवें पुराण 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' का अध्ययन करना परम आवश्यक है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण के ब्रह्मस्वरूप का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसे लौकिक सांसारिक बुद्धि से नहीं समझा जा सकता।

> सृष्टि निर्माण के उपरान्त सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्ण के अर्द्ध वाम अंग से अर्द्धनारीश्वर स्वरूप में 'राधा' प्रकट हुईं। भगवान् श्रीकृष्ण से ही ब्रह्मा, विष्णु, नारायण, धर्म, काल, महेश और प्रकृति आदि सभी की उत्पत्ति हुई।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में चार खण्ड हैं। ब्रह्म खण्ड, प्रकृति खण्ड, श्रीकृष्णजन्म खण्ड और गणेश खण्ड। इन चारों खण्डों में अठारह हजार श्लोक हैं। 'ब्रह्मवैवर्त' शब्द का अर्थ है– ब्रह्म का विवर्त अर्थात् ब्रह्म के रूपान्तरित स्वरूप 'प्रकृति की व्यवस्था का वर्णन' अर्थात प्रकृति के भिन्न-भिन्न स्वरूप और परिणाम जहाँ प्रतिपादित हों, वही पुराण ब्रह्मवैवर्त है, जिसके मुख्य नायक भगवान् श्रीकृष्ण हैं। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' श्रंगार रस से परिपूर्ण है। इसमें सृष्टि का मूल श्रीकृष्ण को ही बताया गया है। इस पुराण के अनुसार विश्व में असंख्य ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्ड के अपने-अपने विष्णु, ब्रह्मा और महेश हैं। इन सभी ब्रह्माण्डों से भी ऊपर स्थित गोलोक में भगवान् श्रीकृष्ण निवास करते हैं।

सृष्टि निर्माण के उपरान्त सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्ण के अर्द्ध वाम अंग से अर्द्धनारीश्वर स्वरूप में 'राधा' प्रकट हुईं। भगवान् श्रीकृष्ण से ही ब्रह्मा, विष्णु, नारायण, धर्म, काल, महेश और प्रकृति आदि सभी की उत्पत्ति हुई। तब नारायण का प्राकट्य कृष्ण के दाहिने अंग से और पंचमुखी शिव का प्राकट्य कृष्ण के वाम पार्श्व से हुआ है। नाभि से ब्रह्मा, वक्षस्थल से धर्म, वाम पार्श्व से लक्ष्मी, मुख से सरस्वती और विभिन्न अंगों से दुर्गा, सावित्री, कामदेव, रति, अग्नि, वरुण, वायु आदि देवी-देवताओं का आविर्भाव हुआ।

द्रोणाचार्य सरीखे शास्त्रज्ञ गुरु भी जिस धर्म तत्त्व को नहीं समझ पाए, भगवान् श्रीकृष्ण जीवन भर उसी धर्म तत्त्व का अनुकरण करते रहे, जिसकी सराहना सदैव विदुर जैसे मनीषी ने की। भीष्म पितामह जैसे धर्म सम्राट् को भी धर्म तत्त्व का ज्ञान भगवान् श्रीकृष्ण ने शरशय्या पर संपूर्ण समर्पण के उपरांत समझाया था। यहाँ तक कि उन्होंने धर्म-अधर्म के दो फाड़ किए और आर्यावर्त के सभी राजाओं को धर्म के पक्ष में युद्ध करने के लिए प्रेरित किया अन्यथा तो महाप्रतापी अर्जुन भी धर्म के नाम पर युद्ध छोड़

भिखारी बनने को तैयार हो गए थे। युद्ध जीतने के पश्चात् भी धर्मराज युधिष्ठिर भीष्म के सामने नेत्रों में अश्रु लिए धर्म का तत्त्व जानने के लिए चरणानुगत हुए, तब भीष्म के आग्रह पर भगवान् श्रीकृष्ण ने वहाँ खड़े बड़े-बड़े विद्वानों की भ्रमित बुद्धि से अधर्म का नाश करके धर्म की गुत्थियों को खोल कर रख दिया। यही श्रीकृष्ण के ब्रह्म स्वरूप का अप्रगट स्वरूप था।

भगवान् श्रीकृष्ण ने बतलाया कि धर्म सदा देश-काल-परिस्थिति सापेक्ष होता है। कोई कर्म ऐसा नहीं है जो स्वयं में पाप या पुण्य हो। एक ही कर्म को पाप या पुण्य अलग अलग देश काल परिस्थिति बनाती है। इस महीन रेखा को पूर्ण तत्त्वज्ञानी ही समझ सकता है। दुष्टों के किसी भी प्रकार दमन को भगवान् श्रीकृष्ण धर्मानुमोदित मानते थे। कर्ण-अर्जुन युद्ध में निहत्थे कर्ण को मारना उन्होंने धर्मोचित बतलाया। उनके अनुसार सदा अधर्म के पोषक को धर्माचरण की आशा रखने का क्या अधिकार है? अनुचित रूप से बार-बार मथुरा पर चढ़ाई करने आ रहे कालयवन को धोखा देने को भी उन्होंने धर्म ही माना। भगवान् श्रीकृष्ण का मत था कि अधार्मिकों के साथ यदि पूर्ण धर्म का पालन किया जाएगा तो अधार्मिकों का हौसला बढ़ेगा और धर्म की ही हानि होगी। उन्होंने इस भ्रम को भी ख़त्म किया कि धर्म का नीति के साथ चोली दामन का साथ है। कहाँ धर्म को प्रधानता देनी चाहिए और कहाँ नीति को, इसे भी उन्होंने खूब स्पष्ट तरीके से प्रयोग करके समझाया। नीति का उपयोग जहाँ धर्म रक्षा में होता है, वहाँ वह नीति की प्रधानता को स्वीकारते हैं और जहाँ नीति से धर्म की हानि होती है वहाँ वह नीति को त्यागने में कोई संकोच नहीं करते हैं। क्योंकि उनका उद्देश्य

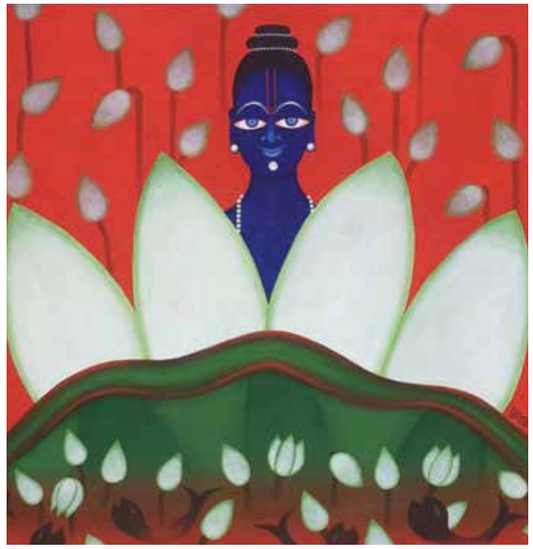

> संसार में लिप्त दिखकर भी आत्मनिष्ठ रहे और दिव्य लोकोत्तर कर्मों द्वारा सारे जगत् का तारण-हार बने रहे। सभी चिंता से दूर, नि:सन्देह यह ही परम ब्रह्म, परमानन्दघन, परमात्मा के लक्षण हैं जिसे समझ पाना सामान्य जीवकोटि के पूर्णत: बाहर की बात है। यह ही पूर्ण विकसित पुरुषोत्तम ब्रह्म भगवान् के लक्षण हैं। वस्तुत: नराकृति परब्रह्म स्वराट पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण ही इस जगत् के एकमात्र निरंकुश एवं एकछत्र स्वामी हैं।

धर्म-रक्षा है न कि नीति-रक्षा। अर्जुन द्वारा युधिष्ठिर पर शस्त्र उठाने का प्रसंग हो, या द्रोण के वध का प्रसंग हो या फिर अश्वत्थामा को मारने की अर्जुन की प्रतिज्ञा का प्रसंग हो कृष्ण सदा धर्म के पक्ष में खड़े हैं। व्यावहारिक ज्ञान, राजनैतिक ज्ञान, धार्मिक ज्ञान से लेकर दार्शनिक ज्ञान आदि कुछ भी हो सर्वज्ञानमय कृष्ण ही पूर्ण थे। इस कारण पाँच हजार दो सौ वर्ष बाद भी श्रीमद्भगवद् गीता के सात सौ श्लोक नित नए व्यावहारिक और चमत्कारिक ज्ञान से प्रस्फुटित हो रहे हैं। यह ज्ञान ब्रह्म ऊर्जा से ओत-प्रोत ईश्वर का एक अंश ही दे सकता है।

ब्रह्म ऊर्जा से ओत-प्रोत होने के कारण ही भगवान् श्रीकृष्ण सदा भयानक परिस्थितियों में कभी भी एक क्षण शोकाकुल नहीं रहे। वे हँसने, मुस्कुराने और विनोद करने का एक भी अवसर नहीं छोड़ते थे। ग्वालों के साथ बंसी बजा रहे हैं, सखे-सखियाँ सब भूलकर नृत्य करते हैं, बंदरों पर मक्खन लुटा रहे हैं, मिट्टी खाकर माँ को छकाते हैं, छकड़ियों से माखन के मटके उल्टाए जाते हैं, ऊखल में बँधकर यमलार्जुन का उद्धार किया जाता है , फलवाली दो-तीन दाने धान के पाकर सब कुछ पा जाती है , अर्जुन के साथ सैर-सपाटे का आनन्द लूटा जा रहा है, फिर भी कहीं लिप्त नहीं थे। यह कार्य एक ब्रह्म ज्ञानी ही कर सकता है, अन्य कोई नहीं। भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं जो संसार में आज तक कभी दु:ख के पाश में नहीं फँसे, सब तरह के लौकिक सुख भोगते हुए भी पूर्ण कर्तव्यनिष्ठ रहे। संसार में लिप्त दिखकर भी आत्मनिष्ठ रहे और दिव्य लोकोत्तर कर्मों द्वारा सारे जगत् के तारणहार बने रहे। सभी चिंताओं से दूर। नि:सन्देह यह ही परम ब्रह्म, परमानन्दघन, परमात्मा के लक्षण हैं जिसे समझ पाना सामान्य जीवकोटि के पूर्णतः बाहर की बात है। यह ही पूर्ण विकसित पुरुषोत्तम ब्रह्म भगवान् के लक्षण हैं। वस्तुत: नराकृति परब्रह्म स्वराट पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण ही इस जगत् के एकमात्र निरंकुश एवं एकछत्र स्वामी हैं।

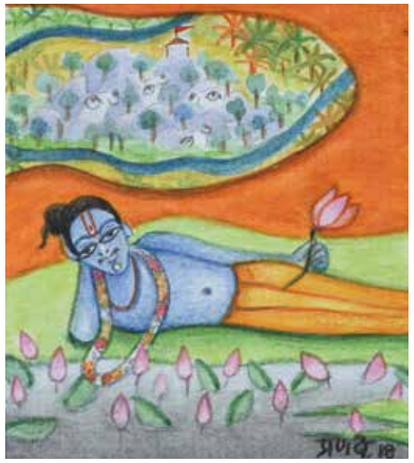

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोगश्चैव षण्णाम् भग इतीरणा।।

(*मनुस्मृति : 1.2 की कुल्लूकभट्ट टीका में उद्धृत*)

वैराग्यं ज्ञानमेश्वर्यं धर्मश्चेत्यात्मबुद्धयः।
बुद्धयः श्रीर्यशश्चैते षड् वै भगवतो भगाः।।

(*म.म. मधुसूदन ओझा के द्वारा गीता के विज्ञानभाष्य में उद्धृत*)

इन सब लक्षणों की समग्रता भी भगवान् के लिए कम ही है। अधिष्ठानभूत ब्रह्म श्रीकृष्ण के लिए भगवान् आदि शंकराचार्य कहते हैं–

भूतेष्वन्तर्यामी ज्ञानमयः सच्चिदानन्दः।
प्रकृतेः परः परात्मा
यदुकुलतिलकः स एवायम्।।

(*– शंकराचार्य : प्रबोधसुधाकर, 195*)

जो ज्ञानस्वरूप, सच्चिदानन्द, प्रकृति से परे परमात्मा सब भूतों में अंतर्यामी रूप से स्थित है, यह यदुकुल भूषण श्रीकृष्ण वही तो हैं। तभी तो स्वयं योगनिद्रा द्वारा 'श्रीकृष्ण कवच' का उल्लेख किया गया है, जो उनके पूर्ण ब्रह्म होने का सूचक है। इन नामों के पाठ से दैहिक, दैविक तथा भौतिक भयों का समूल नाश हो जाता है। श्रीकृष्ण के तेंतीस नामों का पाठ करने से परम ज्ञान की प्राप्ति होती है। भगवान् के मात्र ग्यारह नाम– राम, नारायण, अनंत, मुकुंद, मधुसूदन, कृष्ण, केशव, कंसरि, हरे, बैकुण्ठ और वामन को अत्यन्त पुण्यदायक तथा सहस्त्र कोटि जन्मों का पाप नष्ट करनेवाले बताए गए हैं।

आज पाँच हजार दो सौ साल बाद भी संसार में सबसे अधिक प्रेम मनुष्यों का श्रीकृष्ण पर ही देखा जाता है! इहलोक और परलोक की हर श्रेणी में श्रीकृष्ण के भक्तों की जितनी संख्या है, उतनी अन्य किसी की नहीं है। जो जिस श्रेणी का है, अपने ही तरीके से भगवान् को प्रसन्न करने में लगा है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि पृथ्वी पर 'अन्नदान' से बढ़कर कोई दूसरा दान नहीं है। यह मात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं जिन्हें सर्वाधिक 56 प्रकार के भोग लगाकर प्रसाद जन सामान्य को बाँट दिया जाता है। यही कारण है कि आज पाँच हजार दो सौ साल बाद भी संसार में सबसे अधिक प्रेम मनुष्यों का श्रीकृष्ण पर ही देखा जाता है! इहलोक और परलोक की हर श्रेणी में श्रीकृष्ण के भक्तों की जितनी संख्या है, उतनी अन्य किसी की नहीं है। जो जिस श्रेणी का है, अपने ही तरीके से भगवान् को प्रसन्न करने में लगा है। संसार में ऐसी कोई भी श्रेणी है ही नहीं जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण की विभूति के दर्शन न हों, जिसमें अचिन्त्य भगवान् श्रीकृष्ण की लीला-किरणों की स्फुरणा न हो।

संसार में मनुष्य ही नहीं पशु, पक्षी, लता, वृक्ष, पत्थर, पहाड़, नदियाँ, और ताल सब माधव के स्तवन में मोहितचित्त हैं। सारा चर-अचर, दृश्य-अदृश्य जगत् उन्हीं चितचोर के आकर्षण पाश में बँधा हुआ है। उन्हीं के आकर्षण से स्थिर हो रहा है। ऐसे ब्रह्म अचिन्त्य मोहन हमें अपनी अहैतुकी भक्ति देने की कृपा करें और हमें भी धर्म की रक्षा का सामर्थ्य दें जिससे अधर्मियों का नाश हो सके। इसीलिये हम उन्हें सत्य सनातन वैदिक धर्म के प्रखर दीप्त-प्रभाकर अनंतकोटि ब्रह्माण्डनायक सर्वान्तरात्मा भगवान् परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्णचंद्र परमानंदकंद श्यामसुन्दर मदनमोहन व्रजेंद्रनंदन आदि अनेकों नाम से पुकारते हैं।

|| योगेश कुमार मिश्र

एडवोकेट हाई कोर्ट, लखनऊ, जाने-माने सामाजिक कार्यकर्ता, गौसेवा को समर्पित, सनातन ज्ञानपीठ के संस्थापक। ज्योतिष के शोध को समर्पित, ज्योतिष पर 5 पुस्तकों का लेखन। भिन्न पत्र पत्रिकाओं में लेखन।

कृष्ण और राधा-तत्त्व

क्या कृष्ण की अनन्य सहचरी राधा काल्पनिक हैं? श्रीमद्भागवत में इनका नाम कहीं नहीं आया है। यह इतना विचारणीय विषय है कि प्रवचन करने वालों ने पूरे भागवत में एक जगह 'रा' और 'धा' ये दो अक्षर देखे तो उसी को राधा का वाचक मानकर खुशी से उछल पड़े हैं। वास्तव में राधा का विवेचन 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में हुआ है। लेखक ने इसी पुराण के आधार पर यहाँ राधा का परिचय दिया है।

श्रीकृष्ण की भक्ति में राधामान, राधाशक्ति, राधा समर्पण का बहुत महत्त्व बतलाया गया है। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में राधा की महिमा का अनेकधा वर्णन मिलता है। आध्यात्मिक भाव जगत् में राधा सर्वोपरि शक्ति हैं। प्रकृति तो रजस्, तमस् तथा सत् भाव में त्रिगुणात्मिका है; पर राधा तीनों गुणों से परे महाशक्ति हैं, जो चारों पुरुषार्थों के साधनों से परे प्रेम भाव की प्रकाशिका हैं। यह उज्ज्वला श्रृंगारमयी श्रीकृष्ण से अभिन्न जीव के आनंद का कारण हैं। सब कुछ मिलने के बाद भी बिना प्रेम के आनंद के जीव को परमसुख नहीं मिल पाता। इसीलिए राधा आह्लादिनी शक्ति कही

> सब कुछ मिलने के बाद भी बिना प्रेम के आनंद के जीव को परमसुख नहीं मिल पाता। इसीलिए राधा आह्लादिनी शक्ति कही गई हैं।

'राधा' शब्द को उलट देने पर 'धारा' शब्द बनता है। जो धारा में है, अर्थात् संसार की सहज गति में तैर रहे हैं, उन्हें अपने को उलटना पड़ता है, तब राधा अर्थात् संसार से विमुखता और कृष्ण के प्रति उन्मुखता की प्राप्ति होती है। जब अभीप्सा बढ़ती है, कृष्ण का चैतन्य

गई हैं । गुणों से परे, सिद्धियों से भी परे, मोक्ष से भी परे, सारूप्य, सायुज्य, सामीप्य आदि मुक्तियों से भी परे, केवल कृष्णप्रेम तक जीव को ले जाना राधा का सहज स्वभाव है। इस भाव में केवल त्याग है, त्याग की स्मृति का भी त्याग है। इसीलिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश तप करके भी 'गोपी-भाव' को प्राप्त कर पाते हैं। 'राधा-भाव' तो अत्यन्त दुर्लभ है। विमर्श के तल पर जो बात समझ में आती है वह यह कि भक्त समस्त आकांक्षाओं यहाँ तक कि भगवान् के प्रत्यक्ष दर्शन को भी आकांक्षाओं से मुक्त केवल श्रीकृष्ण के प्रेम और उनसे वियोग की पीड़ा में आनंद का अनुभव करने लगता है तो वह राधाभाव है। सूर ने कहा है– "ऊधो विरहा प्रेम करी।"

ऐसे भक्तों के भीतर धीरे-धीरे वह रस भरने लगता है, जो वचनातीत है। सुख, सम्मान, सांसारिक सफलता, मृत्युभय और न जाने कितने ऊहापोह जो मनुष्य के भीतर हैं, उनका सर्वथा नाश करने की शक्ति जो श्रीकृष्ण में है, वह उनकी राधा नाम की शक्ति से परिचालित है।

यों भी संसार में जो परमशक्ति है, जो सभी धर्मों, सम्प्रदायों, सभी प्रकार के जीवधारियों में नित्य है– वह है प्रेमाशक्ति, प्रेम चेतना। यहाँ न कुछ यज्ञ है, न अनुष्ठान, न मंत्र, न जाति, न वर्णाश्रम, न स्वर्ग, न नरक। इसमें केवल प्रेम ही प्रेम है। ध्यान से देखा जाए तो जो भी आनंद है, वह प्रेम के कारण है । इसकी थोड़ी-सी झलक सांसारिक प्रेम में दिखाई पड़ती है, यह जब परम सत्य अर्थात् भगवान् के प्रति हो जाता है,

> 'राधा' वह चित्त की दशा है, जहाँ श्रीकृष्ण के परम रास का उदय होता है। संसार विलीन हो जाता है। एक निर्मल नीलकांति भक्त को घेर लेती है। वह एक अद्भुत रस का पान करता है। एक दिव्य सुवास चित्त में आविर्भूत होता है, जो वाणी, मन, चित्त की किसी चेष्टा से व्यक्त नहीं किया जा सकता।

॥ डॉ. अनन्त मिश्र

गोरखपुर विश्वविद्यालय में हिंदी के प्रोफेसर और अध्यक्ष के रूप में सेवा निवृत्त; 4 काव्य संग्रह, 2 निबंध संग्रह तथा 2 आलोचना विषयक ग्रंथ प्रकाशित। सम्प्रति : नलिनी निवास, दाऊदपुर, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

तो थोड़ा-सा क्षणिक आनंद परमानंद में बदल जाता है।

आराधना का परम स्वरूप राधा भाव है। इस भाव के बिना श्याम का प्रेम नहीं मिलता है। इसलिए कृष्ण के भक्त 'राधे-राधे' का जप करने लगते हैं। 'राधा' वह चित्त की दशा है, जहाँ श्रीकृष्ण के परम रास का उदय होता है। संसार विलीन हो जाता है। एक निर्मल नीलकांति भक्त को घेर लेती है। वह एक अद्भुत रस का पान करता है। एक दिव्य सुवास चित्त में आविर्भूत होता है, जो वाणी, मन, चित्त की किसी चेष्टा से व्यक्त नहीं किया जा सकता। इतिहास में चैतन्य महाप्रभु, मीरा, जयदेव और तमाम महापुरुषों ने इस भाव का अनुभव किया था। गोरखपुर में राधाभाव के पहुँचे हुए संत राधा बाबा थे। इनकी मूर्ति गीता-वाटिका में है, जहाँ जाने पर शांति और आनंद का अनुभव कोई भी कर सकता है। श्रीभाईजी हनुमान प्रसाद पोद्दार ने पहले दैन्यभाव से विष्णु की, पश्चात् राधाभाव से श्रीकृष्ण का प्रेम प्राप्त किया था। उन्होंने जो 'राधामाधव-चिन्तन' लिखी वह बहुत-सी जिज्ञासाओं को शांत कर देने वाली विमर्श की पुस्तक है।

गोपिकाएँ निःस्वार्थ प्रेम की प्रतीक हैं। उनकी परम श्रेष्ठ गोपी राधा है। राधा रानी सभी देवियों में ज्येष्ठा हैं, क्योंकि कुछ करने, कुछ पाने, कुछ होने की भावना से परे केवल प्रेम ही उनकी उपासना है। जब किसी बड़भागी के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति ऐसा भाव प्रकट होता है तो राधा-कृष्ण श्वेत-श्याम स्वरूप का चित्त में आविर्भाव हो जाता है। सब बंधन कट जाते हैं, समस्त विषाद मिट जाते हैं। सारी आकांक्षाओं का लोप हो जाता है। सब पार्थिवता नष्ट हो जाती है। सब स्वर्ग, नरक, कर्म, पुरुषार्थ, सब प्रकार की मुक्ति सब साधन, सब कुछ समाप्त होकर एक प्रेम ही रह जाता है। प्रेम के आँसू बहाते मनुष्य के चित्त में नित्य कीर्तन, नित्य नृत्य, नित्य उत्सव, नित्य रास, नित्य अद्भुत राग, रस का उदय होता है। यह है राधाभाव। इसलिए बिहारी ने कहा है–

तजि तीरथ, हरि-राधिका,
तन-दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग,
पग-पग होत प्रयागु॥

○ ○ ○

ऋतंभरा

अहंकार हमें सर्वोच्च शक्ति से अलग करता है।
जैसे ही हम उस सर्वोच्च शक्ति से विभक्त होते हैं,
हम असहाय और दुर्बल हो जाते हैं।
जिस के कारण हम दुःख और पीड़ा भोगते हैं ।

○

असली योद्धा वह है जो बाहर के शत्रुओं से नहीं,
भीतर के शत्रुओं को परास्त करता है।

○

कृष्ण की सोलह कलाएँ

श्रीकृष्ण सोलह कलाओं से भरपूर हैं, किन्तु क्या आप जानते हैं कि एक, दो, तीन, चार कला वाले जीव भी होते हैं। मनुष्यों में भी कलाएँ हैं। कलाएँ वास्तव में भगवत् तत्त्व का वह अंश है, जिसकी पूर्णता सोलह पर जाकर हो जाती है। किस प्रकार के जीवों, मनुष्यों एवं अवतारों में कितनी कलाएँ होतीं हैं इसे जानने के लिए विस्तार से पढ़ें। आप स्वयं कितनी कलाएँ धारण करते हैं, इसे समझने के लिए यह आलेख उपयोगी होगा।

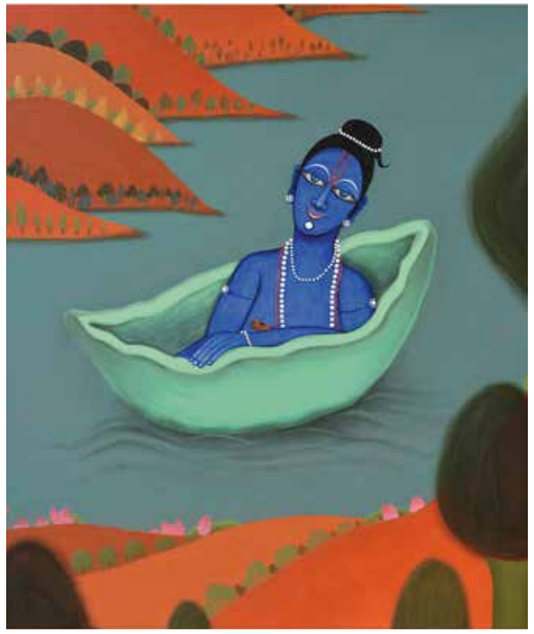

संसार में जब अधर्म बढ़ता है,धर्म क्षीण होने लगता है तथा आसुरी शक्ति का उदय, दैवी शक्ति परास्त होने लगती है तब भगवान् का अवतार होता है। वे सज्जनों की रक्षा एवं दुष्टों के संहार हेतु तथा धर्म की संस्थापना के लिए बार बार प्रत्येक युग में श्रीकृष्ण अवतरित होते हैं, ऐसी स्पष्ट घोषणा गीता में भगवान् ने स्वयं की है।

भगवान् श्रीकृष्ण अवतारी हैं तथा समय समय पर वे अवतारों के रूप में अवतरित होते हैं। गीतगोविन्दकार जयदेव ने दश रूपों में अवतार ग्रहण करने वाले श्रीकृष्ण की स्तुति मंगलाचरण में ही की है। (– गीतगोविन्द : 1.16) इस प्रकार, दशावतारों को श्रीकृष्ण का अवतार तथा श्रीकृष्ण को अवतारी माना गया है। परमात्मा मूल रूप में तथा स्वभाव से ज्ञानस्वरूप है, परन्तु जगत् की रक्षा हेतु विविध रूपों में अवतार ग्रहण करता है। गीता कहती है कि अजन्मा, अव्यय और भूतों के ईश्वर होने पर भी माया के आश्रय से परमात्मा संसार में अवतार रूप में उत्पन्न होता है। (– गीता : 3.6)

अद्वितीय ब्रह्म में शक्ति पूर्ण है। यह शक्ति जब दृश्य के आश्रय से उल्लसित होती है, तो जगत् में दूसरा प्रकाश होता है। इस विकसित शक्ति को 'कला' कहा गया है। 'सोलह' शब्द पूर्णता का प्रकाश है, जहाँ पूर्ण सोलह कलाएँ प्रकाशित होती हैं। उसे पूर्णिमा के चन्द्र से समान माना जाता है। 'प्रश्नोपनिषद्' में **"एवमेवास्य परिद्रष्टुः पुरुषस्य इमाः पुरुषायणाः षोडशकलाः पुरुषं प्राप्य अस्तं गछन्ति** (– 6.5)" तथा 'छान्दोग्योपनिषद्' में **"षोडशकलः सौम्य पुरुषः** (– 6.7.1)।" में परमात्मा में षोडश कला बताई गयी है।

षोडशी पुरुष में ये 16 कलाएँ हैं– आनन्द, विज्ञान, मनः, प्राण, उपादान कारण तथा वाक् हैं। इसी प्रकार निमित्त कारण रूप अक्षर पुरुष की 5 कलाएँ हैं– ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि, तथा सोम। इसी प्रकार क्षर पुरुष (कार्यरूप) की 5 कलाएँ हैं– प्राण, आप्, वाक्, अन्न तथा अन्नाद।

इस प्रकार, आत्मतत्त्व 16 कलाओं से युक्त होता है। उस आत्मतत्त्व को ही गीता में परात्पर, अव्यय, अक्षर तथा क्षर रूप में विवेचित किया गया है। इसीलिए सिद्ध होता है कि संसार के समस्त प्राणियों में षोडश कला वाला परमेश्वर ही प्रकाशित होता है। पूर्ण जगत्, समग्र जीव, ईश्वर आदि षोडश कला वाले परात्पर का अंश या कला है। भागवत में स्पष्ट किया गया है कि और सब तो अंशावतार हैं श्रीकृष्ण तो स्वयं षोडश कला पूर्ण भगवान् हैं-**"अन्ये चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।"** (– भागवत : 1.3.27)

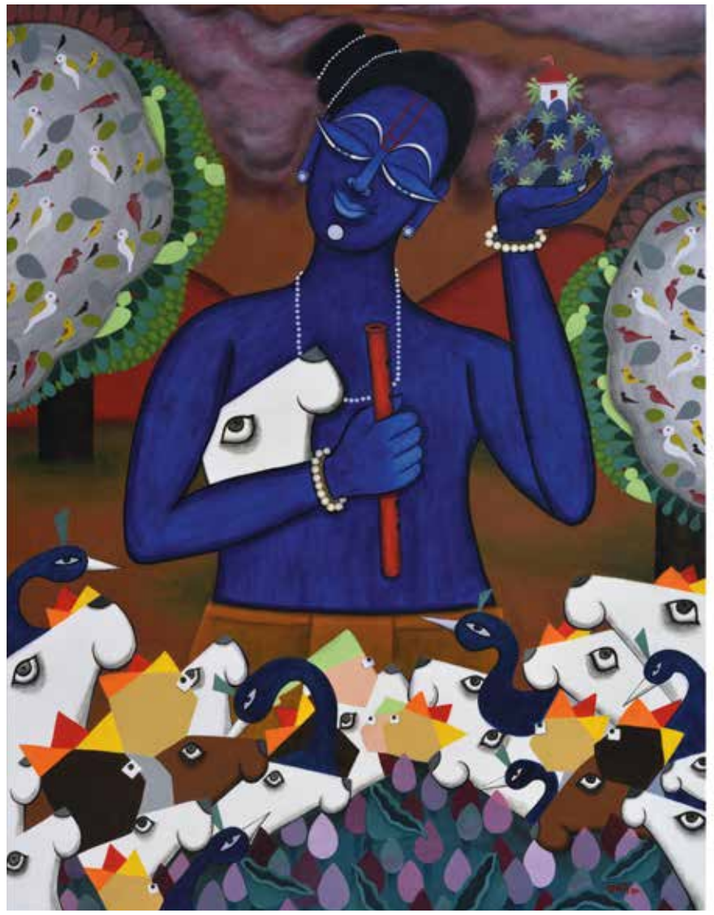

अवतारों में कलाएँ

अब नौ कला से लोग षोडशकला सम्पन्न केन्द्रों को दिव्य या अलौकिक मानते हुए अवतार कोटि में परिगणित किया जाता है। इसलिए नौ कला से षोडश कला तक सम्पन्न अवतार कहे गए हैं, चाहे वे मनुष्य हों या कोई जीव, इसीलिए मत्स्य, कूर्म, वराह आदि को अवतार माना गया है, क्योंकि वे असाधारण या अलौकिक शक्ति से सम्पन्न हैं। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नौ कला से लेकर 15 कला तक अंशावतार एवं षोडश कला ही पूर्णावतार है। सृष्टि के आदि में भगवान् ने लोगों के निर्माण की इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होंने महत् तत्त्व आदि से निष्पन्न पुरुष रूप ग्रहण किया, जिसमें पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ एक मन और पाँच महाभूत ये सोलह कलायें थीं–

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्
महदादिभिः।
सम्भूतं षोडशकलमादौ
लोकसिसृक्षया।।

(– *भागवत : 1.3.1*)

प्राणियों में भगवान् की कलाएँ

परमात्मा की षोडश कलाएँ जड़-चेतनात्मक संसार में व्याप्त है। जितने जीव अपनी योनि में उत्पन्न होते हैं, वे परमात्मा की कला से विकसित होते हैं। जीवों में उत्कृष्टता या अपकृष्टता भगवत्कला के विकास के आधार पर ही निर्धारित होती है। चेतन सृष्टि में सबसे पहले उद्भिज होता है, जिसके अन्नमय कोष के द्वारा यह एक कला विसर्जित होती है इसे 'छान्दोग्योपनिषद्' प्रमाणित करती है– **"एवं सोम्य ते षोडशानां कलानामेका कलातिशिष्टाभूत्। सान्नेनोपसमाहिता प्राज्वाली।** (– 6.7.6)" अर्थात् उद्भिज योनि में अन्नमय कोष के कारण एक कला प्रकट होती है। इसके बाद स्वेदज जीव में दो कला, अण्डज जीव में तीन कला तथा जरायुज पशुयोनि में चार कला तक का विकास होता है। तत्पश्चात् मनुष्य योनि में साधारण मनुष्य से विभूति युक्त मनुष्य में पाँच कला से आठ कला तक भगवत् शक्ति का विकास होता है। इस विकास को लौकिक विकास कहा गया है। पूर्ण कला के आधे तक लौकिक कोटि का विकास है।

भगवान् की सोलहवीं कला

वस्तुतः भगवान् में एक कला ही बीज रूप में है, जिसे पूर्णामृता कहते हैं। यह कला षोडशी कला कहलाती है। यह सच्चिदानन्दरूपिणी है– **षोडशी तु कला ज्ञेया सच्चिदानन्दरूपिणी।** (– ललितासहस्रनाम : 113 की व्याख्या में भास्कर राय द्वारा वासनासुभगोदय से उद्धृत) यह बीजरूपा है। जब जगत् की सिसृक्षा होती है ये तीनों कारण-कार्यरूप में परिणमित होती है– इसे त्रिगुणात्मिका, महामाया, राधा भी कह सकते हैं। वेदों में उसे मन कहा गया है। सत् से ज्ञानेन्द्रियाँ, रज से कर्मेन्द्रियाँ तथा तम से पंच महाभूत प्रकट होते हैं। ईश्वर में केवल सात्त्विक अंश होता है फिर उसके अंशभूत जीवों में त्रिगुणों की स्थिति होती है।

भगवान् के पाँच कर्म हैं– सृष्टि, स्थिति, संहार, अनुग्रह तथा निग्रह। इन कार्यों को करने से या कलाओं से वह ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर तथा सदाशिव कहलाता है। अतः उसमें षड्गुण या षट् कलाएँ दिखने लग जाती है–

मनुष्य योनि में साधारण मनुष्य से विभूति युक्त मनुष्य में पाँच कला से आठ कला तक भगवत् शक्ति का विकास होता है। इस विकास को लौकिक विकास कहा गया है। पूर्ण कला के आधे तक लौकिक कोटि का विकास है।

वैराग्यं ज्ञानमैश्वर्यं धर्मश्चेत्यात्मबुद्धयः।
बुद्धयः श्रीर्यशश्चेति षड् वै भगवतो भगाः।।

भगवान् का अर्थ है– भगवाला। इस श्लोक में छह भग बताये गये हैं– 1. वैराग्य, 2. ज्ञान, 3. ऐश्वर्य, 4. धर्म, 5. यश तथा 6. श्रीः। अर्थात् जिस व्यक्तित्व में छह गुण या कलाएँ पूर्णतया समाविष्ट हैं, उसे भगवान् कहा जाता है।

श्रीकृष्ण की कलाएँ

भगवान् कृष्ण के चरित में ये छह गुण या कलाएँ पूर्णतः परिलक्षित होती हैं–

1. वैराग्य– इसका अर्थ निष्काम भाव या आसक्ति रहित होना है। श्रीकृष्ण का मथुरागमन निरासक्ति का परम प्रमाण है। महाभारत युद्ध में एक नीतिकार के रूप में कार्य करते हुए केवल सारथी के रूप में ही अपने को दिखाना भी वैराग्य वृत्ति का उदाहरण है। गीता में उन्होंने स्पष्ट किया है–

समोऽहं सर्वभूतेषु न द्वेष्योऽस्ति न मे प्रियः।

यह उनका प्रिय सिद्धान्त है कि सभी प्राणियों में न कोई प्रिय है न कोई अप्रिय है। इस प्रकार की भावना रखना समानता है। अतः, श्रीकृष्ण में वैराग्य की पराकाष्ठा परिलक्षित होती है।

2. ज्ञान– ईश्वर कृष्ण में समग्र ज्ञान या सम्पूर्ण ज्ञान गीता के माध्यम से सिद्ध होता है। गीता में उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त अद्वितीय हैं, जिनमें आज भी नये नये अर्थ निकाले जाते हैं, अतः ज्ञानकला का भी समग्र विकास उनके द्वारा प्रकट किया गया है। महाभारत में तीन गीताएँ कामगीता, भगवद्-गीता तथा अनुगीता तथा भागवत में उद्धव गीता उनके पूर्ण ज्ञान का प्रबल प्रमाण है।

3. ऐश्वर्य– श्रीकृष्ण की महत्ता एवं सत्ता जगद्-विदित है। ऐश्वर्य आध्यात्मिक अणिमा आदि अष्टसिद्धि तथा लौकिक अपूर्व सम्पत्ति को माना गया है। आध्यात्मिक शक्ति ही ऐश्वर्य है जिसके कारण कारावास में जन्म लेना, महासंकटों का सामना करते हुए स्वप्रकट काल से ही अपना ऐश्वर्य प्रकट करते हैं। कारावास की काल कोठरी से निकल कर, बचपन में भयंकर राक्षसों का उद्धार, गोवर्द्धन धारण आदि अलौकिक चरित्रों में ऐश्वर्य कला की पूर्णता प्रमाणित होती है। युद्ध में रथ पर बैठकर भयंकर कोलाहल में गीता का प्रवचन भी उनकी आध्यात्मिक शक्ति का प्रचण्ड प्रभाव है। इसी तरह समुद्र में द्वारका की स्थापना लोकोत्तर सम्पत्ति उनकी ऐश्वर्य कला के तत्त्व को सूचित करता है।

4. धर्म– यह उनके जीवन का प्रधान प्रभाव है। उनका हर कार्य धर्म संरक्षण हेतु ही है। सम्मानित शक्तिशाली योद्धा होने के पश्चात् भी धर्मनिष्ठा हेतु युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ बर्तन माँजने का कार्य करना तथा सभी अतिथियों का पाँव धोना। अतः, उनके चरित्र से अमानित्व अदम्भित्व जैसे चरित्र की प्रतिष्ठा होती है। उन्हें न ही कोई प्रशंसा चाहिए, न ही कोई मान और सम्मान। यह अद्भुत बात उनकी धर्म कला का रहस्य प्रकट करती है। कंस और जरासंध को मारने के बाद भी उनका राज्य नहीं लेना, गुरुसेवा, सत्य और क्षमा आदि धार्मिक गुणों को उन्होंने अपने जीवन में घटित किया है। उनकी धर्मनिष्ठा का प्रमाण है कि जब महाराज परीक्षित का मृत बालक के रूप में जन्म होने पर उन्होंने उसे जिलाते हुए कहा था– यदि मैंने धर्मविरुद्ध कोई कार्य न किया हो और सदा धर्माचरण किया हो तो यह बालक जीवित हो जाए। बालक तुरन्त जीवित हो गया। अतः, धर्मकला का पूर्ण विकास इनके श्रीकृष्ण के रूप में सार्थक होता है।

5. यश– इसमें उनकी सभी लीलाओं की याद की जाती है। आज विश्व के सभी भागों में श्रीकृष्ण मन्दिर की स्थापना उनके जीवन्त यश का विकास है। विश्व के असंख्य आत्माएँ उनके पावन यशोमय चरित से आज भी प्रेरणा लेते हैं। 'गीता' एवं 'भागवत' के द्वारा उनके द्वारा किये गये उपदेश ज्ञान एवं चरित्र की महिमा विश्व को आलोकित कर रही है।

श्रीकृष्ण का चरित पाँच हजार वर्षों से भी पुराना है पर उसमें आज भी सरसता एवं नवीनता का अनुभव होता है। उनका अनंत एवं असीमित ज्ञान, धर्म, वैराग्य, यश, ऐश्वर्य तथा श्री उनके पूर्णावतार षोडश कलायुक्त गुण उन्हें भगवान् सिद्ध करती है। कृष्णावतार का चरित्र सम्पूर्णता एवं समग्रता को परिभाषित करता है।

॥ प्रो. राजेन्द्र प्रसाद शर्मा

दर्शनशास्त्र के अध्यापक, विभागाध्यक्ष, राजस्थान विश्वविद्यालय, महाभारत से 94 तथा पुराणों से 24 गीताओं का सम्पादन, दर्शनविषय के अनेक ग्रन्थों तथा शोधपत्रों का लेखन। 'स्वरमंगला', 'विद्यामन्त्रमहायोग' आदि शोध पत्रिकाओं का सम्पादन। राष्ट्रीय स्तर के 30 से अधिक पुरस्कारों से सम्मानित।

6. श्रीः– यह समस्त ब्रह्माण्ड का बीज और आश्रय होने से सर्वोच्च कला है। समस्त जगत् उनमें सृष्ट, स्थित और संगरित होता है। यह उनका विराट् पुरुष का दिव्य रूप है।

इस प्रकार, उनके जीवन की प्रधान छह कलाओं को समझना चाहिए। श्रीकृष्ण का चरित पाँच हजार वर्षों से भी पुराना है पर उसमें आज भी सरसता एवं नवीनता का अनुभव होता है। उनका अनंत एवं असीमित ज्ञान, धर्म, वैराग्य, यश, ऐश्वर्य तथा श्री उनके पूर्णावतार षोडश कलायुक्त गुण उन्हें भगवान् सिद्ध करती है। कृष्णावतार का चरित्र सम्पूर्णता एवं समग्रता को परिभाषित करता है।

सोलह कलाओं के विभिन्न स्वरूप

श्रीकृष्ण योगेश्वर हैं उनके लिए योग के द्वारा उत्पन्न कलाओं के नामकरण इस प्रकार हैं–

मन के संयम से 16 कलाएँ–

अष्टसिद्धि– अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व एवं वशित्व तथा ज्ञान इन्द्रिय-संयम से 9. भूत-भविष्य ज्ञान, 10. दुष्परोक्षज्ञान, 11. सभी प्राणियों की आवाज का ज्ञान 12. मनोविज्ञान, 13. भूगर्भ विज्ञान 14. भुवन ज्ञान, 15. औषधि ज्ञान, 16. तारा-ज्योतिष ज्ञान।

कर्मेन्द्रिय संयम (तपोबल) तथा प्राण संयम (देवबल) से प्राप्त 16 कलाएँ–

1. देव साक्षात्कार, 2. कृत्यसिद्धि 3. शरीर से निकलती हुई आत्मा को देखना, 4. मृत पुरुष से साक्षात्कार, 5. विराट् रूप दर्शन, 6. माया व्यामोह, 7. उपश्रुति विद्या, 8. संस्कारोदय तथा आत्मविद्या, 9. कायव्यूह, 10. परकाय प्रवेश, 11. प्राणहारिणी विद्या, 12. मृतसंजीवनी, 13. स्थाणु संजीविनी, 14. छाया निग्रहणी, 15. आकृति परिवर्तिनी, 16. लिङ्गपरिवर्तिनी।

कर्मेन्द्रिय (बल के द्वारा) निगम तथा आगम के माध्यम से प्राप्त 16 कलाएँ–

1. सर्वाकर्षिणी, 2. स्तम्भिनी, 3. अक्षयकरिणी, 4. निग्रहकरिणी, 5. पुत्रसंजीविनी, 6. जलवर्षिणी, 7. आपोनप्त्रीय, 8. मधुविद्या, 9. मारण, 10. मोहन, 11. उच्चाटन, 11. वशीकरण, 13. विद्वेषण, 14. स्तम्भन, 15. आकर्षण तथा संरक्षण।

कर्मजन्य भौतिक कलाएँ–

1. मृतसंजीवनीगुटिका, 2. संजीवनकरणी, 3. विशल्यकरणी, 4. सावर्ण्यकरणी, 5. सन्धानकरणी, 6. अरिष्टभैषज्या, 7. डिम्भप्रसविनी, 8. बला अतिबला, 9. दिव्यविमान, 10. पुष्पक विमान, 11. सोम विमान, 12. नौकाविमान, 13. हर्यश्व विमान, 14. प्लव विमान, 15. अमृतगवी, 16. शिलासन्तरणी।

अर्थात् मन, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय तथा कर्मजन्य कलाएँ प्रत्येक 16 प्रकार की हैं।

चन्द्रमा की कलाएँ– चन्द्रमा में प्रत्येक तिथि की कला भिन्न होती हैं– अमृता , मानदा , पूषा , तुष्टि , पुष्टि, रति, धृति, शशिनी, चंद्रिका, कान्ति, ज्योत्स्ना, श्री, प्रीति, अंगदा, पूर्णा तथा पूर्णदा।

किसी के मत में 16 कलाओं के नाम इस प्रकार हैं– श्री, भू, कीर्ति, वाणी, लीला, कान्ति, विद्या, विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञान, क्रिया, योग, विनय, सत्य, ईशित्व एवं अनुग्रह।

प्रत्येक देव के साथ कला या तिथि रूपी कला नित्य विराजमान रहती है। जिस तरह सूर्य के साथ उसकी किरणें रहती हैं। अतः, कलाएँ अनंत मानी जाती हैं, जिनका वर्णन किसी मनुष्य के द्वारा सम्भव नहीं है। कबीरदासजी ने कहा है–

सब धरती कागद करूँ, लिखनी सब बनराय।
सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु गुण
लिखा न जाय॥

अतः, पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्ण की सोलह कलाओं का वर्णन ही तत्काल पर्याप्त है।

नारायण, विष्णु और कृष्ण
एक विवेचना

शब्दों की भी अपनी यात्रा होती है, अपना संसार होता है। वह एक देश की भाषा से दूसरे देश जाते हैं और नई भाषा के साथ घुल-मिल जाते हैं। संस्कृत में कई ऐसे शब्द हैं, जो दूसरी भाषा से आए पर संस्कृत की प्रकृति के अनुरूप ढलकर हमारे बीच आज चर्चित हो गए। नारायण, विष्णु और वासुदेव ऐसे ही शब्द हैं। आइए, इनका यात्रा-वृत्तान्त पढ़ें।

o o o

महाभारत में उपलब्ध 'विष्णुसहस्रनाम' में, देवाधिदेव परमात्मा या ब्रह्म के साकार रूप के एक हजार नामों में नारायण, विष्णु और वासुदेव तीनों ही मिलते हैं। स्तोत्र का नाम ही विष्णुसहस्रनाम है। वास्तव में विष्णु ही प्रधान नाम या नामी है तथा शेष उसके नाम हैं; किंतु हम प्राचीन वैदिक साहित्य देखते हैं तो इसमें नारायण या हरि, विष्णु अथवा देवाधिदेव परमात्मा के रूप में उपलब्ध नहीं होते। इसका आशय यह हुआ कि भारतीय वाङ्मय में परमात्मा के रूप में 'नारायण' शब्द की उपलब्धि परवर्ती काल में हुई। दूसरे यह भी देखा जाता है कि उत्तर भारत में जहाँ 'विष्णु' नाम अधिक प्रचलित है, वहाँ दक्षिण में 'नारायण' नाम अधिक

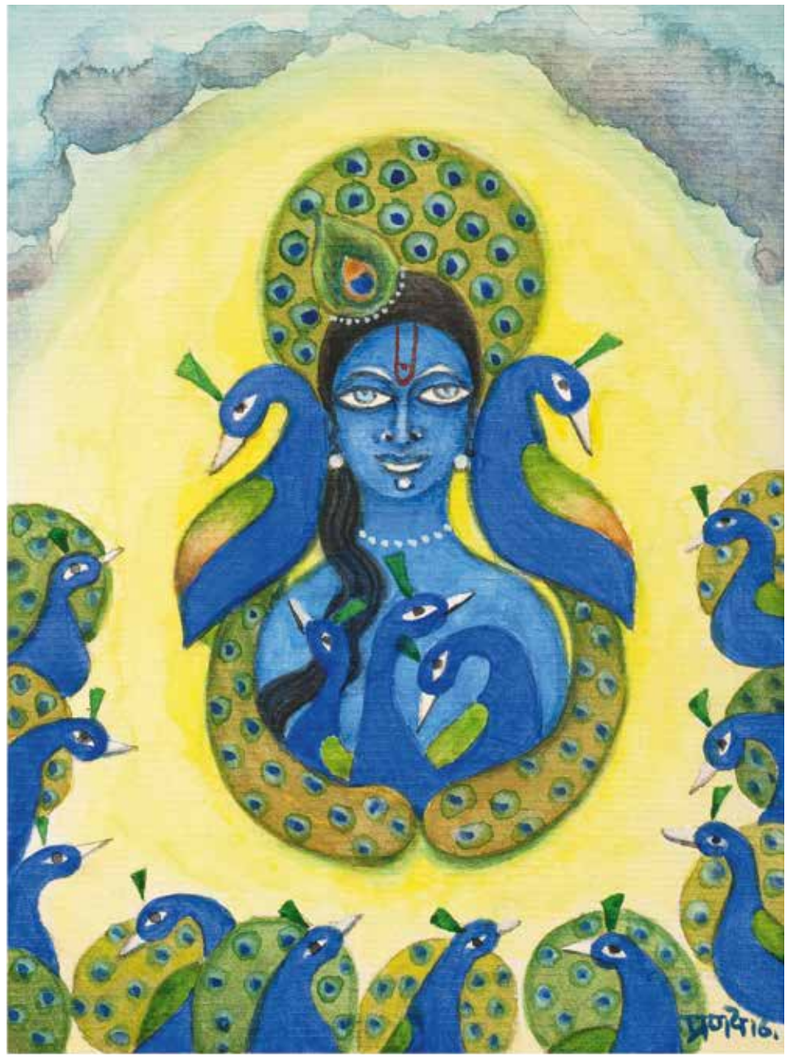

प्रचलित है। यद्यपि पौराणिक साहित्य में विशेषकर श्रीमद्भागवत महापुराण में 'नारायण', 'विष्णु' और 'वासुदेव' एक ही अर्थ में प्रयुक्त हैं, जो परम पुरुष परमात्मा का वाचक है। उनकी एक-सी छवि है। वे क्षीरसागर में निवास करते हैं। शेष शैय्या पर लेटे रहते हैं और नीलवर्ण हैं। प्रश्न यह उठता है कि भारतीय वाङ्मय में और लोक मानस में 'नारायण' शब्द का प्रवेश कब हुआ? 'विष्णु' शब्द तो वेद में है; किंतु वहाँ वह सूर्य का परवर्ती विकास लगता है, क्योंकि विष्णु को उपेन्द्र भी कहा गया है। इन्द्र और आदित्य दोनों ही अदिति के पुत्र हैं। अतः, इन्द्र के बड़ा होने के कारण विष्णु को उपेन्द्र कहा गया।

इस पृष्ठभूमि में हम महाकवि भास के 'बालचरित' के मंगलाचरण में उपलब्ध इस श्लोक को देखते हैं, जिसमें नारायण और विष्णु को अलग-अलग बताया गया है और दोनों का वर्ण भी अलग है। इस श्लोक से इन अवधारणाओं के विकासक्रम में हमें कुछ संकेत मिलेंगे। महाकवि भास संस्कृत साहित्य के प्राचीनतम कवि हैं। वे लगभग चंद्रगुप्त के समकालीन हैं, क्योंकि चाणक्य के अर्थशास्त्र में महाकवि भास के दो श्लोक यथावत् पाये जाते हैं। श्लोक निम्नानुसार है–

शंखक्षीरवपुः पुरा कृतयुगे नाम्ना तु नारायण-
स्त्रेतायां त्रिपदार्पितत्रिभुवनो विष्णुः सुवर्णप्रभः।
दूर्वाश्यामनिभः स रावणवधे रामो युगे द्वापरे
नित्यं योऽञ्जनसन्निभः कलियुगे वः पातु दामोदरः।।

'नारायण' शब्द सुमेरी मूल का हो, जिसमें जल के अर्थ में 'नारा' और स्वामी के अर्थ में 'इन्', इन दो शब्दों से 'नाराइन' बना और बाद में उसे संस्कृत के अनुरूप करने के लिए 'नारायण' बना दिया गया। यह बात भी व्यवहार से बहुत स्पष्ट है कि विष्णु की अपेक्षा नारायण शब्द का प्रयोग दक्षिण भारत में अधिक होता है।

इस श्लोक के अनुसार नारायण, विष्णु, राम और कृष्ण का क्रम और उनके वर्ण इस प्रकार हैं:–

नारायण	**कृतयुग**	**श्वेत वर्ण**
विष्णु	**त्रेतायुग**	**स्वर्ण वर्ण**
राम	**द्वापरयुग**	**दूर्वादल श्याम**
कृष्ण	**कलियुग**	**काला या श्याम वर्ण**

यह श्लोक स्पष्ट संकेत दे रहा है कि वर्तमान में नारायण, विष्णु और कृष्ण को जो एक ही वर्ण का बताया जा रहा है, वैसी अवधारणा भास के युग में नहीं थी। यह भी संभव है कि एकरूपता परवर्ती युग में ही आई हो। अतः इन नामों का विकास-क्रम जानना आवश्यक है।

नारायण-

'नारायण' शब्द मूलतः संस्कृत का नहीं है। मनुस्मृति में तथा महाभारत में 'नारायण' शब्द की इस प्रकार व्याख्या की गई है–

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं मम तत्पूर्वमतो नारायणो ह्यहम्।।

(– महाभारत, नारायणीय पर्व, अ. 328.35)

इसी को मनुस्मृति में इस प्रकार दिया गया है–

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनम् पूर्वम् तेन नारायणः स्मृतः।।

(– मनुस्मृति : 1.10.)

दोनों का अर्थ एक ही है। पहले श्लोक में उस बात को उत्तम पुरुष के रूप में कहा गया है तथा दूसरे श्लोक में प्रथम पुरुष के रूप में कहा गया है। आशय यही है कि 'आपः' का अर्थ होता है 'नारा' अर्थात् वह जिसका पानी निवास स्थान, जिसका वह नारायण है। किन्तु यह व्युत्पत्ति बाद के संस्कृतज्ञों द्वारा दी गई जान पड़ती है। 'नारायण' शब्द की ऐतिहासिक दृष्टि से जो व्युत्पत्ति है, उस पर डॉ. राम विलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'पश्चिमी एशिया और ऋग्वेद' (– हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 1994, पृ. 227) में बहुत सुन्दर प्रकाश डाला है–

"जलप्रलय कथा के प्रसंग में दामोदर कोसंबी ने लिखा है कि मत्स्य अवतार की धारणा भारत में सुमेर से आई और जैसे सुमेरी जलदेवता का प्रतीक बकरमच्छ जल के भीतर कोठे में सोता है, वैसे ही विष्णुनारायण जल पर सोते हैं तथा 'नारायण' नाम ही आर्येतर उद्भव का हो सकता है। 'नारा' का अर्थ 'जल' किया गया है। संभवतः संस्कृत में यह उधार लिया हुआ शब्द है और द्रविड़ हो सकता है, असीरियन भी हो सकता है।' असीरियन अर्थात् सुमेरी संस्कृति के अवसान से बहुत बाद का, परंतु पड़ोस के ही क्षेत्र का। कोसंबीने 'नारा' के साथ लगे 'यण' की व्याख्या नहीं की, पर उन्होंने बताया है कि बकरमच्छ जिस देवता का प्रतीक है, उसका नाम 'एया' अथवा 'एन्कि' है। सुमेरी 'एन्' का अर्थ है 'स्वामी'। 'एन्कि' का मूल अर्थ है 'पृथ्वी का स्वामी'। फिर इस शब्द का व्यवहार 'जल के स्वामी' के लिए होने लगा। 'नारा– जल', 'एन– स्वामी', द्रविड़-सुमेरी संयोग से जल के स्वामी बने नारायण। संस्कृत में एक शब्द है 'इन' जिसका अर्थ है स्वामी। और यह शब्द सीधे ऋग्वेद में है– **'इनो बाजानां पतिः इन पुष्टीनां सखा'** (– 10.26.7)। 'इन' ईश्वरः, 'इनः' प्रभुः– सायण पूषा ईश्वर है, अन्न के स्वामी हैं, पूषा प्रभु हैं, सभी प्राणियों के मित्र हैं। अब नारायण का संबंध 'नारा' से हो चाहे न हो, 'इन' का संबंध सुमेरी 'एन्' से अवश्य है।"

राम विलास शर्मा की उक्त व्याख्या के संदर्भ में जब हम पुनः 'नारायणीय पर्व' को देखते हैं तो यह स्पष्ट आभास होता है कि 'नारायण' शब्द का मूल भारतवर्ष से बाहर का है। नारायणीय पर्व के अनुसार नारदजी एक बार बदरीनारायण होते हुए श्वेतद्वीप पहुँचे। वहाँ चंद्र वर्चस पुरुष थे, जो श्वेत वर्ण के थे और श्वेत वर्ण के देव की ही उपासना करते थे। इस लेख के प्रारंभ में जो भास का श्लोक दिया गया है उसमें भी नारायण को श्वेत वर्ण बताया गया है और कृतयुग में उनकी सत्ता का संदर्भ है। मनुस्मृति भी 'आपो नारा' से नारायण की उत्पत्ति बताती है। अतः, यह बहुत संभव है कि 'नारायण' शब्द सुमेरी मूल का हो, जिसमें जल के अर्थ में 'नारा' और स्वामी के अर्थ में 'इन्', इन दो शब्दों से 'नाराइन' बना और बाद में उसे संस्कृत के अनुरूप करने के लिए 'नारायण' बना दिया गया। यह बात भी व्यवहार से बहुत स्पष्ट है कि विष्णु की अपेक्षा नारायण शब्द का प्रयोग दक्षिण भारत में अधिक होता है। इसका कारण यह हो सकता है, जैसा कि डॉ. शर्मा ने संकेत किया है कि 'नारा' शब्द संस्कृत में देशज है और यह संभव है कि द्रविड़ मूल का हो। मैंने व्यवहार में भी देखा है कि जहाँ उत्तर के लोग

जहाँ नारायण के रूप में क्षीरसागर या विशाल जल राशि उनका खुद का घर था, विष्णु के आते-आते वह उनकी ससुराल हो गया। क्योंकि तब तक समुद्र को लक्ष्मी का पिता माना जाने लगा। वैदिक काल में बड़ी-बड़ी समुद्र यात्राओं से ही व्यापारी धन कमाते थे। इसलिये भी संभवतः समुद्र को लक्ष्मी का पिता माना गया।

किसी संदर्भ में 'भगवान्' या 'परमात्मा' शब्द का प्रयोग करते हैं वहीं दक्षिण के लोग 'नारायण' शब्द का प्रयोग करते हैं। स्पष्ट ही परमात्मा के वाचक तीनों शब्दों में नारायण सबसे प्राचीन मालूम पड़ता है और बाद में किसी समय जब तीनों का ऐक्य हुआ तो नारायण भी श्वेतवर्ण से मेघवर्ण हो गये और उनका क्षीरसागर में शयन अर्थात् जल में निवास अभी तक यथावत् है। ('नारायण' शब्द का प्रयोग 'सत्य' के साथ संभवतः और परवर्ती काल में हुआ। 'नारायण को प्रामाणिकता प्रदान करने के लिए 'सत्यनारायण की कथा' का प्रचलन मध्य और उत्तर भारत में हुआ।– सं.) यह ध्यान देने योग्य है कि लगभग सभी सभ्यताओं में उनके प्रधान देवता का आरंभ जल के स्वामी के रूप में हुआ और प्राचीन सभ्यताओं में जल के स्वामी के रूप में ही नारायण शब्द की व्युत्पत्ति प्रारंभ हुई जो बाद में विष्णु या वासुदेव के अर्थ में भी प्रयुक्त होने लगी।

विष्णु-

विष्णु शब्द की उत्पत्ति बहुत स्पष्ट है। वैदिक काल में जब देवतंत्र विकसित हुआ तो उसका प्रारंभ आपः अर्थात् जल से हुआ और जल को विश्व की माताओं के रूप में चित्रित किया गया– **'आपो विश्वस्य मातरः'।** ये मातृसत्ताक अवस्था थी और इस समय के देवता प्रायः बहुवचन में हैं। इसके बाद 'वरुण' और 'मित्र' का उदय हुआ। वरुण और मित्र इन दोनों का संबंध जल से है। ऋग्वेद में इन्हें सिंधुपति कहा गया है। इसके बाद अदिति एक महत्त्वपूर्ण देवी वैदिक काल में है और इन्हें सभी देवताओं की माता कहा गया है। इन्द्र भी अदिति के पुत्र हैं और आदित्य, सूर्य भी अदिति के पुत्र हैं और इसलिये विष्णु को उपेन्द्र भी कहा गया है। विष्णुपुराण में विष्णु के अनेक नामों में कई सूर्यवाचक शब्द भी हैं यथा भास्करद्युति, बृहद्भानु, विहायसगति, रवि, सूर्य, सविता इत्यादि। और इसी सूर्य को संदर्भ कर बाद में ऋग्वेद का प्रसिद्ध मंत्र है–

इदम् विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूढमस्य पांसुळे।।

भगवान् विष्णु ने पराक्रम किया और तीन पदों से इस पृथ्वी, अंतरिक्ष और आकाश को नाप लिया। उनके दो पद तो स्पष्ट हैं, किन्तु तीसरा पद धूमिल हो गया। पुराणों में भगवान् वामन की कथा इसी अर्थ में है। सूर्य की एक किरण पृथ्वी पर आती है, दूसरी अंतरिक्ष में सौरमण्डल के ऊपर जाती है तथा तीसरी सौरमण्डल के बाहर कहाँ जाती है, यह पता नहीं है। ये ही वे विष्णु हैं जिनका उल्लेख भास ने अपने श्लोक में त्रेता युग में 'सुवर्णप्रभः' अर्थात् सोने के वर्ण वाले देवता के रूप में चित्रित किया है। किंतु जैसा ऊपर बताया गया है प्रारंभिक काल में जब तीनों देवों का विलय हुआ तो विष्णु भी नीलवर्ण हो गये और वे भी क्षीरसागर में शयन करने वाले शेषशायी हो गए। अंतर इतना पड़ा कि जहाँ नारायण के रूप में क्षीरसागर या विशाल जल राशि उनका खुद का घर था, विष्णु के आते-आते वह उनकी ससुराल हो गया। क्योंकि, तब तक समुद्र को लक्ष्मी का पिता माना जाने लगा। वैदिक काल में बड़ी-बड़ी समुद्र यात्राओं से ही व्यापारी धन कमाते थे। इसलिये भी संभवतः समुद्र को लक्ष्मी का पिता माना गया। 'विष्णुसहस्रनाम' में विष्णु शब्द का प्रयोग तीन बार आया है। पहली बार क्रमांक 2 पर, दूसरी बार क्रमांक 258 पर और तीसरी बार क्रमांक 657 पर। सर्व व्यापक और जगत् का पालन करनेवाले के रूप में ये शब्द आए हैं। जबकि नारायण शब्द एक बार ही श्लोक क्रमांक 39 में क्रमांक 245 पर आया है।

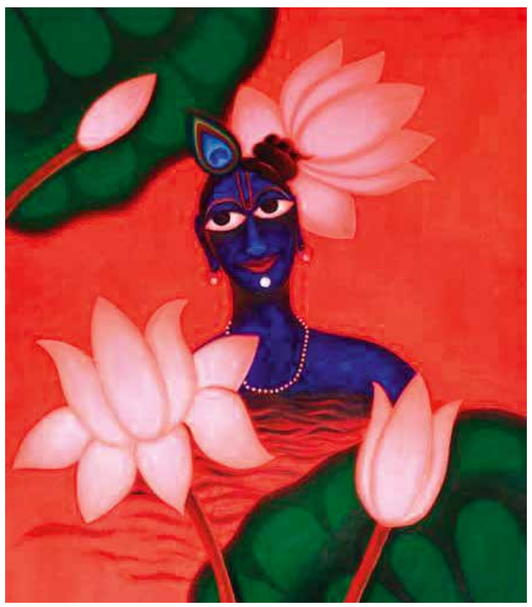

सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः ।

इस प्रकार वैदिक सूर्य से विष्णु शब्द की उत्पत्ति हुई और बाद में परब्रह्म परमात्मा के रूप में इसका अंतर्भाव हो गया और उत्तर भारत के प्रमुख देव के रूप में परवर्ती काल से ये माने जाने लगे।

वासुदेव-

'वासुदेव' शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि द्वापर में भगवान् कृष्ण का यह नाम है। उनके पिता का नाम वसुदेव होने से उन्हें वासुदेव कहा गया। उनके वर्ण के संबंध में भी कोई दो मति नहीं है। भास ने अपने श्लोक में उन्हें काला बताया है। सम्पूर्ण परंपरा में भी वे नीलवर्ण ही हैं। किंतु 'वासुदेव' शब्द के विषय में एक बात जानना बहुत आवश्यक है कि अन्तःकरण के चर्तुव्यूह के संबंध में 'वासुदेव' शब्द की पहले से ही व्याप्ति रही है। महाभारत के 'नारायणीय पर्व' में 'नारायण' शब्द की तरह वासुदेव शब्द की भी व्युत्पत्ति दी गई है।

छादयामि जगद्विश्व भूत्वा सूर्य इवांशुभिः ।
सर्वभूताधिवासश्च वासुदेवस्ततो ह्यहम् ।।

(– महाभारत : नारायणीय पर्व, 328.36)

इस पूर्ण विश्व को सूर्य की तरह अपनी आभा से जो आच्छादित करे तथा जो सब प्राणियों में निवास करे, वही वासुदेव है। अन्तःकरण के चर्तुव्यूह में मनुष्य का चित्त भगवान् वासुदेव हैं, बुद्धि उनके पुत्र प्रद्युम्न हैं, मन उनका पौत्र अनिरुद्ध है और अहंकार उनके भाई बलराम या संकर्षण हैं। उपासना की परंपरा में इस चर्तुव्यूह का बहुत बड़ा महत्त्व है। श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'। श्रीकृष्ण को साक्षात् भगवान् बताया गया है। अर्थात् शेष भगवान् के स्वरूप अवतार हैं तथा श्रीकृष्ण अवतारी हैं। विष्णुपुराण में विष्णु भगवान् के नाम का महत्त्व दर्शाते हुए वासुदेव शब्द का प्रयोग भी उसी महत्ता के साथ किया गया है। 'दाशार्हः', 'सात्वतां पतिः', 'मुकुन्द' इत्यादि उनके पर्यायवाची तो हैं ही, साक्षात् 'श्रीकृष्ण' शब्द का प्रयोग भी 'विष्णुसहस्त्रनाम' में किया गया है। स्तोत्र के अंत में भगवान् नाम का महत्त्व बताते हुए उल्लेख किया गया है–

भक्तिमान् यः सदोत्थाय शुचिस्तद् गतमानसः ।
सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत् प्रकीर्तयेत् ।। (125)
वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ।
न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।।
द्यौःसचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः ।
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ।। (134)
ससुरासुरगन्धर्व सयक्षोरगराक्षसम् ।
जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ।। (135)
इन्द्रियाणि मनोबुद्धि सत्त्वं तेजो बलं धृतिः ।
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ।। (136)

स्पष्ट ही वासुदेव और विष्णु और श्रीकृष्ण ये पर्यायवाची हो गए हैं। भास के प्रारंभिक श्लोक में एक कड़ी श्रीराम भी हैं, जिनको द्वापर में अवतीर्ण बताया गया है तथा जो दूर्वादलस्य श्याम हैं। महर्षि वाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदासजी के अनुसार ये ही परब्रह्म परमात्मा स्वरूप हैं और 'विष्णुसहस्त्रनाम' में उनके हजार नामों में श्रीराम का भी उल्लेख है।

'श्रीमद्भागवतपुराण' में आद्य पुरुष, समस्त ज्ञान-विज्ञान के सारस्वरूप, भक्त वत्सल भगवान् कृष्ण की इस स्तुति के साथ हम इस विमर्श का उपसंहार करते हैं–

भवभयमपहन्तुं ज्ञानविज्ञानसारं
निगमकृदुपजह्रे भृङ्गवद् वेदसारम् ।
अमृतमुदधितश्चापाययद् भृत्यवर्गान्
पुरुषमृषभमाद्यं कृष्णसंज्ञं नतोऽस्मि ॥ 46 ॥

○ ○ ○

ऋतंभरा

जिस तरह कौवे कभी इंद्रधनुष नहीं पकड़ सकते चाहे जितनी ऊँची उड़ान भर लें, वैसे ही हम निजी ख़ुशी, ताक़त, लाभ और सम्मान के इंद्रधनुष कभी नहीं पकड़ सकते। कुछ अंतर अवश्य रह जाता है।

○

॥ डॉ. मोहन गुप्त

एम.ए. (संस्कृत, अंग्रेजी एवं विधि तथा वाणिज्य), अंग्रेजी के अध्यापक के रूप में सेवा, भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारी, मध्य प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव के पद पर रहते हुए अवकाशप्राप्त। तीन उपन्यास, मैकबेथ का संस्कृत अनुवाद एवं भवभूति के करुण रस का विवेचन विषय पर पुस्तक लेखन तथा 200 से अधिक आलेखों तथा अनुवाद।

कृष्ण के बाँके बिहारी होने का चिंतन

कृष्ण एक ऐसे अवतार हैं जिनकी अनेक छवियाँ हैं और अनेक नाम हैं। श्रद्धा, प्रेम और अनुराग से उनकी भक्ति होती है। एक ओर जहाँ वे बाल कृष्ण के रूप में मन लुभाते हैं, वहीं दूसरी ओर रासबिहारी हो कर माधुर्य रस से रिझाते हैं। कहीं वे दार्शनिक हैं तो कहीं बाँके बिहारी। मन में जिज्ञासा उठना स्वाभाविक है। क्यों हैं कृष्ण बाँके बिहारी? क्या है यह बाँकपन?

○ ○ ○

'बाँका' शब्द का अर्थ होता है टेढ़ा। बाँके बिहारी का विग्रह (मूर्ति) कंधा, कमर और घुटने के स्थान पर मुड़े होने के कारण 'बाँके' से जाना जाता है। यही कारण है कि तीन जगह से मुड़े होने के कारण श्रीकृष्ण को 'त्रिभंगी लाल' भी कहा जाता है। कृष्ण के इस बाँके बिहारी रूप के बारे में अनेक कथाएँ और किंवदंतियाँ प्रचलित हैं।

बताया जाता है कि एक बार मीरा बाई ने जब बिहारी (श्रीकृष्ण) के दर्शन किए; उन्हें अपलक एकटक देखा तो वे उनके प्रेमपाश में पड़ कर उन्हीं के साथ चले गए। बाद में सेवाधिकारियों के आग्रह पर मीरा बाई ने बाँके बिहारी को वापस किया। यही कारण है वृंदावन में स्थापित 'बाँके बिहारी'जी के मंदिर में बाँके बिहारी के सम्मुख थोड़ी-थोड़ी देर पर पर्दा गिराया जाता है; ताकि वे फिर किसी पर रीझ कर उसके साथ न हो लें।

कथा है रामकृष्ण परमहंस ने भी भावविह्वल होकर एक बार बिहारीजी का दर्शन करते समय उन्हें आलिंगित कर लिया था।

बिहारीजी एक बार करौली स्टेट, जयपुर की महारानी के प्रेम में वशीभूत होकर स्वयं वृंदावन से करौली जा कर उनके महल में जा विराजे थे। बाद में उन्हें अथक प्रयास और अनुरोध से

भरतपुर और फिर वृंदावन लाया जा सका था। करौली और भरतपुर में भी बाँके बिहारी के मंदिर इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में आज भी विद्यमान हैं।

एक कथा यह भी है कि स्वामी हरिदास को वृंदावन में जब राधा-कृष्ण के एक साथ दर्शन हुए तो उन्होंने श्रीकृष्ण से निवेदन किया, 'मैं तो संत हूँ। आपको तो लँगोटी पहना दूँगा, मगर राधा रानीजी के नित्य श्रंगार के लिए मैं आभूषण, आभरण कहाँ से लाऊँगा?' हरिदासजी के ऐसे वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा, 'तो चलिए हम दोनों राधा-कृष्ण एक प्राण और एक देह हो जाते हैं।' उसी समय युगल एकाकार एक विग्रह के रूप में परिवर्तित हो गए। स्वामी हरिदासजी ने इस विग्रह का नाम 'बाँके बिहारी' रखा और प्रकट हुए स्थान को 'विशाखा कुंड'

'बाँके बिहारी' का बाँकपन बहुविध और बहु आयामी है। इसमें बंकिमता अगर है तो सरलता और सहजता भी, असत्य-अनाचार के प्रति प्रतिकार स्वर है तो सदाचार-सौजन्य के प्रति सम्मान भाव भी है। अनुरक्ति और प्रेम की प्रतीति है तो विरक्ति और वैराग्य का बोध भी है। भक्ति और श्रद्धा पर रीझ कर भक्त को आत्मस्थ कर लेने की सदाशयता है तो अनय और दम्भ के प्रति प्रबल दुराव भी है।

नाम दिया। मान्यता यह घटना संवत् 1567 में मार्गशीर्ष, शुक्ल पक्ष की है। बाद में इसी तिथि को विहार पंचमी के रूप में आयोजित करने की परम्परा चल पड़ी। स्वामी हरिदास बाँके बिहारीजी के इस त्रिभंगी विग्रह का नित्य प्रति बड़े विधि-विधान से पूजन करते थे।

श्रीकृष्ण के इस बाँके बिहारी विग्रह और इससे जुड़ी कथाओं या किवदंतियों से इतना तो स्पष्ट है कि 'बाँके बिहारी' का बाँकपन बहुविध और बहु आयामी है। इसमें बंकिमता अगर है तो सरलता और सहजता भी, असत्य-अनाचार के प्रति प्रतिकार स्वर है तो सदाचार-सौजन्य के प्रति सम्मान भाव भी है। अनुरक्ति और प्रेम की प्रतीति है तो विरक्ति और वैराग्य का बोध भी है। भक्ति और श्रद्धा पर रीझ कर भक्त को आत्मस्थ कर लेने की सदाशयता है तो अनय और दम्भ के प्रति प्रबल दुराव भी है।

श्रीकृष्ण के 'बाँकेबिहारी' होने का जो तत्त्वचिंतन है, वह सूरदास के इस पद में पूर्ण रूप से उभर आता है। सूर कृष्ण के ऊपर मुरली के प्रभाव और उसके फलस्वरूप गोपियों में स्वभावत: पैदा हुई ईर्ष्या का बड़ा ही सहज चित्र यहाँ उकेरते हैं। मुरली कृष्ण को कई तरीक़े के नाच नचाती है, फिर भी उनकी सबसे प्रिय बनी हुई है। मुरली कृष्ण को एक पैर पर खड़ा रखती है और अपना अत्यधिक अधिकार उन पर जताती है। वह कोमल कृष्ण से अपनी आज्ञा का पालन कठोरतापूर्वक करवाती है जिसके फलस्वरूप उनकी कमर टेढ़ी हो गयी है। इतना ही नहीं वह उन्हें अपने एक दास की भाँति गर्दन भी झुकाने को बाध्य करती है। स्वयं उनके अधरों पर विराजमान रहते हुए उनके कोमल हाथों से अपने पैरों को भी दबवाती है। टेढ़ी भृकुटी, बंकिम नेत्रों और फड़कते हुए नासिका-पुटों से गोपिकाओं पर क्रोध करवाती है। महाकवि सूरदास ने गोपिकाओं के उलाहनों के माध्यम से इस पद में कहा है कि मुरली कृष्ण को एक क्षण के लिए भी हर्षित जानकर धड़ से सिर हिलवाती है अर्थात् 'नहीं-नहीं' का संकेत करवाती है। गोपियों को कृष्ण सबसे अधिक प्रिय हैं। परंतु कृष्ण को कोई और प्रिय है। यही गोपियों के लिए असह्य वेदना और ईर्ष्या का कारण है। जिसका नतीजा यह है कि मुरली को उलाहना देते हुए कहती हैं, "मुरली तऊ गोपालहिं भावती"।

कृष्ण के 'बाँकेबिहारी' कहलाने या उनकी 'त्रिभंगी' मुद्रा के पीछे मुरली की बहुत बड़ी भूमिका है। यह मुरली अगर कभी गोपियों को कृष्ण के अधरों पर विराजे नागवार लगती है तो इसी मुरली के कारण कृष्ण की बंकिम त्रिभंगी मुद्रा गोपियों के लिए राहत की बात हो जाती है।

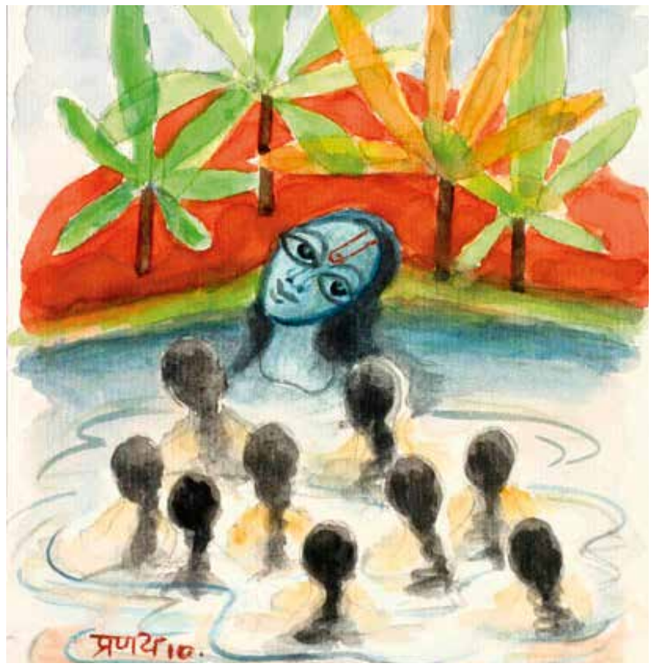

उद्धव (कृष्ण के सखा और चचेरे भाई, जो ब्रह्मज्ञानी थे। प्रेम के बारे में उन्हें कुछ नहीं पता था।) जब अपने ज्ञान की गठरी लिए गोपियों को समझाने चले आए कि वे अपना ध्यान ब्रह्मज्ञान में लगाएँ, न कि कृष्ण के प्रेम में। परंतु होता उल्टा है। जब उद्धव गोपियों से कहते हैं कि प्रेम के बदले ज्ञानमार्गी भक्ति के माध्यम से कृष्ण को प्राप्त करने की सीख वे देने आए हैं। गोपियाँ उन्हें साफ़ साफ़ कह देती हैं, "ऊधो, मन नाहीं दस बीस, एक हुतौ सों गयों स्याम सँग को अवराधे ईस।" अर्थात् ऊधौ मन दस बीस नहीं हैं हमारे पास, एक था वह भी श्याम के साथ चला गया। अब और कहाँ से लाएँ जो किसी और से लगा दें? सूरदास कहते हैं इसपर भी ऊधो नहीं मानते तो गोपियाँ इसी त्रिभंगी मुद्रा का हवाला देते हुए कहती हैं, "अब कैसो निकसत है ऊधो! तिरछे हैं जो अड़े।" अर्थात् यदि कृष्ण हृदय में सीधे जड़े होते तो हम उन्हें निकालने का अनचाहा प्रयास भी करतीं। परंतु वे तो हृदय में जड़कर तिरछे हो गए हैं और भीतर ही अड़े हुए हैं। तिरछे जड़े हुए को निकालना सम्भव नहीं है। वे यह भी सुनने को अंतत: विवश हो जाते हैं–

ऊधो जू सुधो गहो वह मारग ज्ञान की तेरे जहाँ गुदरी है।
कोऊ नहीं सिख मानि है हयाँ,
इक स्याम की प्रीति प्रतीति खरी है।

सच तो यह है कि कृष्ण के प्रति गोपियों की यह अनुरक्ति इतनी प्रबल है कि वे उनकी बंकिमता में ही उन्हें स्वीकार कर चुकी हैं। कृष्ण की बंकिमता गोपियों के लिए अभिशाप नहीं बल्कि उनके हृदय में सदा पैठे रहने की वजह से एक वरदान सी है। कृष्ण की बंकिमता अन्य कई अवसरों पर भी वरदान सिद्ध हुई है।

॥ डॉ. सुनील कुमार पाठक

अनेक राष्ट्रीय स्तर के पुरस्कारों से सम्मानित डॉक्टर सुनील कुमार पाठक की हिंदी और भोजपुरी की कविता, समालोचना की 6 पुस्तकें prआकाशित हो चुकी हैं। उनकी अब तक देश के जाने माने 50 से अधिक पत्रिकाओं और समाचार पत्रों में 500 से अधिक बार रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। उनकी रचनाएँ आकाशवाणी और दूरदर्शन के चैनलों पर अपना विशेष स्थान रखती हैं।

"एक जो होये तो ज्ञान सिखाइये, कूप ही में यहाँ भाँग परी है।" (भारतेंदु हरिश्चंद)

अर्थात् ऊधो, जो सीधी बात समझो तो तुम्हारी ज्ञान मार्ग की गुदड़ी सम्भालो, यहाँ कोई सीख नहीं मानेगा, हम केवल श्याम की प्रीति को खरा मानती हैं। एक हो तो ज्ञान सिखाओ, यहाँ तो पूरे कुएँ में ही भाँग पड़ी है अर्थात सब एक ही नशे में हैं– जिसे श्याम कहते हैं।

सच तो यह है कि कृष्ण के प्रति गोपियों की यह अनुरक्ति इतनी प्रबल है कि वे उनकी बंकिमता में ही उन्हें स्वीकार कर चुकी हैं। कृष्ण की बंकिमता गोपियों के लिए अभिशाप नहीं बल्कि उनके हृदय में सदा पैठे रहने की वजह से एक वरदान सी है। कृष्ण की बंकिमता अन्य कई अवसरों पर भी वरदान सिद्ध हुई है।

कृष्ण के बाँकपन का एक और रूप है उनका राधा से प्रेम। अद्भुत रिश्ता है यह भी। राधा कृष्ण की संबंधी थी। अपने पति की नारियों के प्रति अनुदारपूर्ण व्यवहार से वह खिन्न रहा करती थीं। वह चहारदीवारी में क़ैद नारी जीवन की बिलकुल पक्षधर नहीं थी। यह बात स्पष्ट है कि गोकुल जैसा नारी स्वातंत्र्य का वातावरण कहीं नहीं था। राधा और कृष्ण का प्रेम और त्याग अद्भुत था। न आयु की सीमा थी न ही भाव रस में डूबने की कोई सीमा थी। माधुर्य और गम्भीरता का सँगम। पूरा जीवन प्रेम के नाम पर उत्सर्ग कर देने का एक अनोखा विरह पूर्ण मिलन। यह किसी कृष्ण जैसे बाँके व्यक्तित्व के जीवन का हिस्सा हो सकता है। किसी साधारण व्यक्तित्व का नहीं।

कृष्ण का पूरा जीवनचरित उनकी बंकिमता और विसंगतियों का ही अनुपम निर्देशन है, जिसके जरिये सरल, सहज, मानवीय भावों का प्रकट होना है। श्रीकृष्ण के 'बाँके बिहारी' होने का तत्त्व चिंतन इतना मौलिक़ और सारभूत है कि अपनी विशदता और वैशिष्य को किसी एक आलेख में समेटना कठिन है। उनका बाँकपन मारक हो कर भी मृदुल है, वास्तविक हो कर भी मोहक है। विद्रोही हो कर भी संस्कृति-विमुख नहीं है। विसंगति मूलक हो कर भी समरस और पावन है। श्रीकृष्ण युग की विडंबनाओं को गिरा कर उनके निवारण की प्रेरणा देते हैं। हर प्रकार की समस्या का समाधान तलाशने के क्रम में सतत रचनाशील और सार्थक उद्देश्य के साथ फल के प्रति आस्थावान बने रहने की सीख देते हैं, कृष्ण अपनी ओर आकृष्ट इसी लिए करते हैं चूँकि वे विद्रूप अनाकर्षक में भी आकर्षण भर देने वाले सौंदर्य के अप्रतिम विधान हैं।

कृष्ण इसलिए भी कृष्ण हैं, चूँकि कृष्णत्व में डुबकी लगा लेने वाला परम धवल हो कर उज्ज्वलतम हो जाता है। श्रीकृष्ण-चरित में गहरे उतरने वाले अनुरागी चित्त की ऐसी ही गति की ओर कविवर बिहारी लाल ने संकेत दिया है।

या अनुरागी भिन्न की गति समझे नहीं कोय
ज्यों-ज्यों बूढ़े स्याम रँग, त्यों त्यों उज्ज्वल होय।।
(बिहारी सतसई)

अर्थात् श्याम रंग में डुबकी लगा कर उज्ज्वल होने का यह विरोधाभासी वैशिष्ट्य दरअसल 'बाँके बिहारी' के बाँकपन और गौरव का अप्रतिम महोत्सव है।

◦ ◦ ◦

ऋतंभरा

श्रीमद्भगवदगीता के अनुसार आत्मा के अतिरिक्त कुछ भी शाश्वत नहीं है।

◦

नवरस और कृष्ण

जिसका आस्वादन किया जाए उसे रस कहते हैं। एक सामान्य प्रश्न है कि कृष्ण के चरित में मूल आस्वादन योग्य रस क्या है? क्या उनकी बाल-लीला और रासलीला मुख्य है या गीता के उपदेशक के रूप में योग-लीला? श्रृंगार रसराज है, अन्य सभी रस उसी के विवर्त हैं; लेकिन निर्वेद सभी रसों का विलय है। लेखक ने सिद्ध किया है कि कैसे शान्त, वात्सल्य और भक्ति ये तीन परवर्तीकाल में रस कहे गए , जिसके कारण कृष्ण का परम रस निर्वेद ओझल होता गया।

◦ ◦ ◦

रस की व्याख्या दो अलग-अलग दृष्टियों से की जाती रही है। ये दोनों दृष्टियाँ एक दूसरी के विरोध में खड़ी नज़र आती हैं। परंपरागत तौर पर माना गया है कि मनुष्य 'रसरूप' है। इस तरह की सोच के पीछे ब्रह्मवाद खड़ा दिखाई देता है। 'रसो वै सः' का संबंध इसी विचार से है। वहाँ रस और आनंद एक दूसरे का पर्याय हैं। इस विचारधारा के तहत ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप है, परंतु जब हम इस तरह

की रसानुभूति को पाना चाहते हैं, तो उसके लिये हमें संसार के सभी 'विषयों के पार' जाना पड़ता है। वेदांत इस विचारधारा को दर्शन की शक्ल देता है। उसके मुताबिक संसार के सब विषय हमारी चेतना पर एक तरह का पर्दा डाले रहते हैं। बेपर्दा होते ही हमारी चेतना अपने असल स्वरूप से एकाकार हो जाती है।

वेदांत की इस सोच ने हिंदुस्तान आने वाले सूफियों को इतना प्रभावित किया कि उन्होंने इस बेपर्दादारी को अपना फलसफा बना लिया। रस वहाँ इलाही 'खुमारी' का रूप ले लेता है। निर्गुण धारा में वह कबीर का 'गूँगे का गुड़' हो जाता है और नानक के लिये 'रात दिन चढ़ी रहने वाली नाम खुमारी' बन जाता है पर जब हम इस परमरस की बात न करके, 'नवरस की बात करते हैं, तो हम एकदम उलट दिशा में चले जाते हैं। नवरस के दर्शन का संबंध संसार के विषयों के साथ है। जबकि कृष्ण भगवद्गीता में जगह जगह कहते हैं कि परमरस तभी मिलेगा, जब हम साँसारिक विषयों का परित्याग करेंगे।

भरत मुनि ने सबसे पहले इस तरह का 'विविधरूपात्मक रस विवेचन' किया था। उनका 'नाट्य शास्त्र', जिसमें यह विवेचन मिलता है, दूसरी शती की रचना है पर वे अपने शास्त्र में अपने बहुत से पूर्ववर्ती आचार्यों के नाम लेते हैं। इससे यह पता चलता है कि रस के एकरूप और विविधरूप होने से ताल्लुक रखने वाली दृष्टियाँ उनसे काफी पहले से मौजूद रही होंगी। रस को विविध रूपात्मक मानने की बात, उसके एकरूप होने की बात से एकदम उलट है। भरत मुनि के शास्त्र को

भरत मुनि के आठ रस, जो बाद में नवरस, और उसके बाद, एकादश रस तक हो गए, कृष्ण के ज्ञान, कर्म और भक्ति योग के दर्शन से कदाचित मेल नहीं खाते। इतना ही नहीं, वे उसके विरोध में खड़े दिखाई देते हैं।

आधार मानें, तो पाएँगे कि वहाँ जो रस है, उसका संबंध 'लोक' से है। इसीलिये वे अपने इस लोकवेद को 'पंचम वेद' कहते हैं। इस पंचमवेद में सभी वेदों का सार है, पर इससे जो रस मिलता है, वह 'विषयाधारित' है, न कि 'विषय परित्यागी'। भरत मुनि अपने विविध रसों को स्वरूपतः 'सुख-दुःखात्मक' कहते हैं जबकि कृष्ण का ब्रह्मरस 'सम सुख दुःख अवस्था' में पहुँचने से मिलता है। वह विषयातीत है और सुख दुःख से परे है। जैसे भगवद्गीता के बारहवें अध्याय में कहा गया है– "निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी।"

'विषयानुराग' से कृष्ण 'काम, क्रोध, लोभ, मोह अहंकार' आदि विकारों की उत्पत्ति मानते हैं। 'क्रोध से सम्मोह और सम्मोह से स्मृतिभ्रंश' तक हो जाने की ओर इशारा करते हैं। इसलिये 'विषयानुराग' के बजाये वे 'ईशानुराग' की बात करते हैं। वे उस 'रति भाव' का समर्थन नहीं करते हैं, जो भरत मुनि के श्रंगार रस का स्थायी भाव है। इसी तरह वे उस 'क्रोध' के साथ भी खड़े नहीं हो पाते, जो

रसों के इस विवेचन का मूलाधार साहित्य है, जबकि जिस परमरस की बात कृष्ण करते हैं, उसका संबंध मनुष्य के मूल स्वरूप के साथ है। इन दोनों में सीधे तौर पर कोई विरोध नहीं है पर ये दोनों एक दूसरे के उलट खड़े तब दिखाई देने लगते हैं, जब हम यह बात उठाते हैं कि उन तक पहुँचा कैसे जाता है?

भरत मुनि के 'रौद्र रस' के स्थायी भाव की तरह है और न उस 'शोक' के, जो 'करुण रस' का आधार है। भरत मुनि के आठ रस, जो बाद में नवरस, और उसके बाद, एकादश रस तक हो गए, कृष्ण के ज्ञान, कर्म और भक्ति योग के दर्शन से कदाचित मेल नहीं खाते। इतना ही नहीं, वे उसके विरोध में खड़े दिखाई देते हैं। भरत मुनि के रस की विविध धर्मिता का आधार अथर्ववेद है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि उन्होंने ऋग्वेद से विचार को, यजुर्वेद से कर्म को, सामवेद से गान को और अथर्ववेद से रस को लिया है।

रस की जो चर्चा 'अथर्ववेद' में मिलती है, वह वनस्पतियों के सार या अर्क को निकालने से ताल्लुक रखती है। वैसे अन्य वेदों में भी रस का जहाँ-तहाँ उल्लेख हुआ है, पर वह 'सोमरस' के संदर्भ में है। यह जो सोमरस है, वह सब रसों का रस है जबकि अथर्ववेद, रस के विविध औषध रूपों की ओर चला गया। रसों के रस या परम रस की जो बात है, वह आगे चल कर ब्रह्म रस तक पहुँच गई थी। ये दो दिशाएँ हैं। भरत मुनि रस के विविध रूपों की बात करते हैं। यह रस का लौकिक और व्यावहारिक पक्ष है। नवरसों का संबंध इसी से है जबकि कृष्ण रस के उस रूप से संबंध बनाते हैं, जो दार्शनिक है। उसका संबंध परमरस के साथ है।

कृष्ण की यह परम रस वाली दिशा, वेदों के बजाय, उपनिषदों के अधिक निकट है। हालाँकि हमारी सारी दर्शन चिंतन परंपरा की मूलभूमि भी वेद ही हैं। वेदों में विविधता बहुलता के तमाम सूत्र मौजूद हैं। वहाँ उन विचारों में आपस में कोई विरोध नहीं है परंतु बाद में उनका जिन रूपों में अंतर्विकास हुआ, वे कई बार अपनी अलग दिशा में इतनी दूर तक निकल जाते हैं कि उनमें विरोध तक दिखाई देने लगता है। यही स्थिति नवरस और परम रस वाली चिंतन धाराओं की भी हुई। कृष्ण के परमरस की ज़मीन उपनिषदों में दिखाई देती है। उसे वहाँ सृष्टि की रचना प्रक्रिया की व्याख्या का आधार बनाया गया है। छांदोग्य में बताया गया है कि "समस्त प्राणियों और पदार्थों का रस अथवा सार पृथ्वी है। पृथ्वी का सार जल है, जल का रस औषधियाँ हैं, औषधियों का रस पुरुष है, पुरुष का रस वाणी है, वाणी का रस साम है और साम का रस उद्गीथ है। यह सभी रसों में सर्वोत्तम रस है।"

दूसरी तरफ भरत मुनि के द्वारा की गई आठ रसों की चर्चा है। वे हर रस के स्थायी भाव, वर्ण और उस रस के अधिष्ठाता देवता का विवरण भी देते हैं। इसे नीचे एक तालिका के रूप में दिया जा रहा है–

1	श्रंगार	रति	श्याम	कामदेव/विष्णु
2	हास्य	हास	श्वेत	शिवगण/प्रमथ
3	करुण	शोक	कपोत	यम
4	रौद्र	क्रोध	लाल/रक्त	रुद्र
5	वीर	उत्साह	गौर/हेम	महेंद्र
6	भयानक	भय	कृष्ण	काल
7	वीभत्स	जुगुप्सा	नील	महाकाल
8	अद्भुत	विस्मय	पीत	गंधर्व/ब्रह्मा

इस सूची में उद्भट के द्वारा विवेचित दो अन्य रसों को भी, निम्नानुसार जोड़ लिया जाये, तो यह संख्या दस हो जाती है।

9	शांत	निर्वेद	धवल	नारायण विश्वनाथ
10	वात्सल्य	वत्सलता	धवल	पद्मगर्भ लोक माताएँ

यहाँ केवल एक ओर रस की चर्चा भी ज़रूरी लगती है। इसे रूप गोस्वामी ने प्रस्तावित किया था,

11	भक्ति	ईश रति

आप देख सकते हैं कि बाद में उद्भट और रूप गोस्वामी द्वारा जो रस जोड़े गये, उनका उद्देश्य परमरस को काव्यशास्त्र के दायरे में ले आने का था। रसों के इस विवेचन का मूलाधार साहित्य है, जबकि जिस परमरस की बात कृष्ण करते हैं, उसका संबंध मनुष्य के मूल स्वरूप के साथ है। इन दोनों में सीधे तौर पर कोई विरोध नहीं है पर ये दोनों एक दूसरे के उलट खड़े तब दिखाई देने लगते हैं, जब हम यह बात उठाते हैं कि उन तक पहुँचा कैसे जाता है?

साहित्य सर्वसमावेशी होता है। वह जीवन के किसी रूप या पक्ष को नकारता नहीं। वह उन भावों या चित्त वृत्तियों की भी अवहेलना नहीं करता, जिन्हें अध्यात्म चित्त का विकार कहता है। आप ऊपर दी गयी भरत मुनि के रसों की सूची को देख सकते हैं। वहाँ स्थायी भावों के रूप में अधिकांश ऐसे हैं, जो अध्यात्म की नज़र में विकार हैं। मसलन रति, क्रोध, शोक, भय और जुगुप्सा या घृणा। केवल हास, उत्साह और विस्मय ऐसे हैं, जिनकी फिर भी जैसे-तैसे अध्यात्म में कोई जगह हो सकती है। इसलिये बाद में उद्भट निर्वेद को ले आये। कृष्ण जब ज्ञानयोग की बात करते हैं, तो 'वैराग्य और अभ्यास' को मन को काबू में लाने की कुंजी बताते हैं। निर्वेद वही वैराग्य है, जो काव्य में शांत रस तक ले जाता है। इसका अध्यात्म से मेल बैठता है। इसलिये कुछ लोग इसे नवरसों में सर्वाधिक महत्त्व देते हैं।

दिशा, भगवद्गीता की दिशा के उलट खड़ी दिखाई देने लगी।

काव्य ने कृष्ण का संबंध नवरसों से तो कुछ हद तक ज़रूर जोड़ दिया पर कृष्ण के द्वारा स्वयं प्रतिपादित परमरस से सामान्य जन का रिश्ता टूटता-सा दिखाई देने लग पड़ा। भगवद्गीता में कृष्ण के विश्वरूप में रौद्र, वीभत्स, भयानक और अद्भुत रसों की अभिव्यक्ति के लिये पूरी गुंजाइश थी। हमारे साहित्य का ध्यान उस ओर गया तो सही, पर बहुत कम। नतीजतन कृष्ण का नवरसों से संबंध, अभी तक अपर्याप्त ही अधिक दिखाई देता है।

o o o

॥ डॉ. विनोद शाही

हिंदी एवं अंग्रेज़ी के अध्येता; पूर्व प्राचार्य; आलोचना, प्राच्यविद्या, उपन्यास, नाटक, कविता आदि 40 से अधिक पुस्तकों का लेखन; रामविलास शर्मा आलोचना सम्मान (2010), शिरोमणि साहित्यकार सम्मान (2015) आदि से सम्मानित।

बाद में रूप गोस्वामी भक्ति को ही रस कहने लगते हैं। हालाँकि वह साधन है, साध्य नहीं। फिर भक्ति के ऐसे आचार्य आ गए, जो भक्ति को भी साध्य कहने लगे। उन्होंने कहा, हमें मुक्ति नहीं चाहिये। हमारे लिए कृष्ण का सान्निध्य पर्याप्त है। तो इस विचारधारा से प्रेरित वल्लभ संप्रदाय का जो कृष्ण भक्ति साहित्य सामने आया, उसका पूरा ज़ोर कृष्ण की लीला के गायन पर आ गया। नतीजा ये निकला कि कृष्ण की बाल लीला और रास लीला का इतना महिमा मंडन हुआ कि उनके जीवन के अन्य तमाम पक्ष गौण हो गए। इसकी वजह स्पष्ट थी। श्रृंगार काव्य में अंगीरस माना जाता था तो वही कृष्ण लीला में भी प्रमुखता से चित्रित हुआ। और इसका नुकसान भी हुआ। वह यह कि रास लीला विलासिता का बहाना हो गयी। भक्तिकाल के गर्भ से रीतिकाल का जन्म हो गया। कृष्ण का योगेश्वर रूप छिप गया। काव्य की

ऋतंभरा

यह शरीर ही धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र है।
जिसमें रोपित भला या बुरा बीज सदा
संस्कार के रूप में अंकुरित होता है।

o

यदि चित्त में विकार आता है तो शरीर में
विकार स्वाभाविक है।

o

आत्मबोध किसी भी व्यक्ति को हो सकता है,
यदि उसमें संकल्प शक्ति, धैर्य, सहनशक्ति और
समर्पण का भाव है।

o

श्रीकृष्ण और आठ अंकों का रहस्य

कहते हैं कि आठ को बहुत शुभ अंक नहीं मानने का एक टैबू लोगों में है और यह कुछ ऐसा ही होते जा रहा है, जिस प्रकार पश्चिमी देशों में 13 के बारे में टैबू है लेकिन हम देखेंगे कि सनातन परम्परा में कोई अंक अशुभ नहीं हैं क्योंकि हर अंक के साथ दिव्य वस्तुएँ जुड़ीं हैं। आठ भी ऐसा ही अंक है। आठ के समूह में बहुत सारी चीजें हैं। और तो और श्रीकृष्ण की गाथा में भी आठ अंक कितने महत्त्वपूर्ण हैं, इसे जानने के लिए आगे पढ़ें...

o o o

देव कवि अष्टयाम श्रीकृष्ण को समर्पित करते हैं। वे मानते हैं श्रीकृष्ण जैसा नायक अन्यत्र कहाँ? वे आठों प्रहर स्मरणीय और वंदनीय हैं। कवि मोहन उन्हें अष्टांग साधन में निरत अष्टांग भजन योगेश्वर कहते हैं। जो अष्टछाप के सखा अष्टकुटी नाग के दमनकर्ता हैं। मीरा बाई आठ घड़ियों में से एक भी घड़ी कृष्ण के बिना नहीं रहना चाहती थी, तो चंद्रसखी आठों दर्शन श्रीकृष्ण (नंदलाल) के करने के लिए कटिबद्ध हैं।

भारत में अष्टचक्र, अष्टांगिक मार्ग, अष्टकोण, अष्टनगर, अष्टप्रहर, अष्टदिशा और अष्ट दिक्पाल से लेकर अष्टमूर्ति तक अनेक मान्यताएँ आठ की संख्या को लेकर हैं और बहुत संयोग है कि यही अंक पूर्ण परात्पर भगवान् श्रीकृष्ण के साथ भी जुड़ा हुआ है।

देवयोनियाँ आठ हैं– विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, रक्ष, गंधर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध।

छंदशास्त्र में आंकिक उपमानों का प्रयोग किया गया है। छंदशास्त्र में प्रयुक्त आंकिक उपमान में ८ अंक से वसु– धर, ध्रुव, सोम, अह, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभाष।,

योग के भी आठ अंग हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।,

लक्ष्मी आठ प्रकार की मानी गयीं हैं– आद्या, विद्या, सौभाग्या, अमृता, कामा, सत्या, भोगा एवं योगा लक्ष्मी।,

दिशाएँ आठ हैं– पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य।,

याम यानी दिन के प्रहर आठ हैं। अतः अष्टयाम कहे जाते हैं– मंगला, शृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या-आरती तथा शयन।

अष्ट सिद्धियाँ– अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा तथा प्राप्ति' प्राकाम्य' इशित्व और वशित्व।,

नागों की संख्या भी आठ हैं– शेष या अनंत, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख, कुलिक।

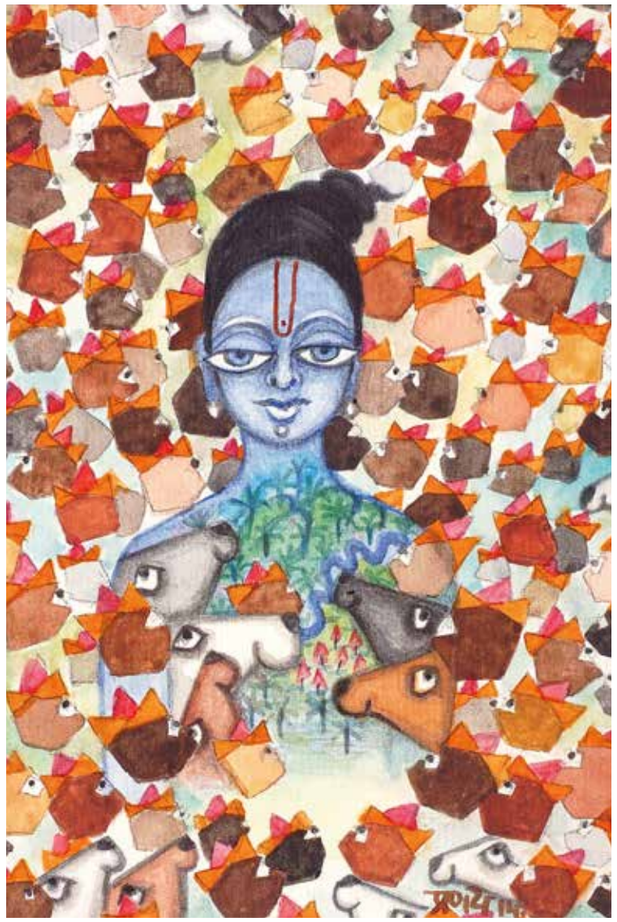

ऐसे परमात्मा का स्मरण भक्ति से (अष्टांग भक्ति– मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या-आरती तथा शयन), योगबल (अष्ट विद्या उपाय) से भ्रुकुटी के मध्य (आठवें स्थान), प्राण (आठवें) को अच्छी प्रकार से स्थापित करने का निर्देश पुन: आठ-आठ की संख्या का ग्रंथन है।

इसके उत्तर भी कृष्ण ने अष्ट अंक में ही दिये हैं। इनमें ब्रह्म अष्ट रूप में बताया गया है– सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भ, हिरण्यबीज, हिरण्य कुंभ, प्रजापति, रू, ब्रह्मा और धात्री नाम से स्मरणीय हैं। जिसके लिए अग्निपुराणकार ॐ, ह्रां, हुं, ह्रां, हुं, ह्रं जैसे अष्टाक्षरों के साथ अष्टमुद्राओं सहित 'नम:' संकेतित करता है।

उत्पत्ति और विनाश वाले आठ पदार्थ अंतर्यामी रूप से वासुदेव अधियज्ञ और आठ भावों– प्राणों का स्मरण रोचक है। 'सर्वेषु कालेषु' पद में आठों काल प्रहरों का संदर्भ है, जिनमें वे मन के आठों चरण और बुद्धि की आठों स्थितियों को अपने में निवेशित करने का निर्देश करते हैं। मयि, अर्पितमनोबुद्धिः, माम्, एव, एष्यसि, असंशयम् (– गीता : 8.7) इसी अध्याय का आठवें श्लोक के अष्टांगिक रूप के सातवें ध्यान और आठवें दिव्य पुरुष 'समाधि' स्थिति का प्रतिष्ठापक है। इसके आठ पद हैं।

अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिन्तयन्।।8।।

श्रीकृष्ण ने सच्चिदानंदघन परमेश्वर की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है, वे आठ हैं और सदा सर्वदा स्मरणीय हैं–

1. वह शुद्ध सच्चिदानंदघन सर्वज्ञ है,
2. सभी का नियंता है
3. सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म है,
4. सब का धारण-पोषणकर्ता है,
5. अचिंत्य स्वरूप है
6. सूर्य की तरह नित्य
7. चेतन प्रकाश रूप
8. अविद्या से अति परे है।

आठ दिशाओं में अवस्थित गज भी आठ हैं– कुमुद, ऐरावत, पद्म, पुष्पदंत, वामन, सुप्रतीक, अंजन, सार्वभौम।

वर्ष भर में विशेष महत्त्व की अष्टमी की संख्या भी आठ हैं– जन्माष्टमी, राधाष्टमी, दुर्गाष्टमी, दुर्वाष्टमी, भीष्माष्टमी, गोपाष्टमी, शीतलाष्टमी व भैरवाष्टमी।

आठ भैरव हैं– काल, बटुक, शाह, गढ़ी, आनंद, गौर, बाल, खुत्कुनिया भैरव।– सं.)

अष्ट लक्ष्मी सिद्धि वसु, योग कंठ के दोष।
योग-राग के अंग अठ, आत्मोन्नति जयघोष।। (–सलिल)

श्रीमद्भगवद्गीता के आठवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने इस अंक को अनूठे रूप में परिभाषित किया है। कुल अट्ठाईस श्लोक हैं और अक्षर ब्रह्म योग वास है। इसमें उस कारण रूप ब्रह्म की जिज्ञासा है। इसके बाद अध्यात्म, कर्म, अधिभूत, अधिदैव, अधियज्ञ और उसकी शरीर में स्थिति तथा युक्त चित्तवाले पुरुषों द्वारा अंत समय (आठवें काल) में किस प्रकार जानने में आते हैं, ये आठ? (– गीता : 8,1-2)

ऐसे परमात्मा का स्मरण भक्ति से (अष्टांग भक्ति– मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, सन्ध्या-आरती तथा शयन), योगबल (अष्ट विद्या उपाय) से भ्रुकुटी के मध्य (आठवें स्थान), प्राण (आठवें) को अच्छी प्रकार से स्थापित करने का निर्देश पुन: आठ-आठ की संख्या का ग्रंथन है। दिव्य पुरुष की विशेषताएँ (परमपुरुषमुपैति दिव्यम्) आठ मानी गई हैं। आठ ही सिद्धि हैं– अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा तथा प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ये सिद्धियाँ 'अष्टसिद्धि' कहलाती हैं। 'सिद्धि' शब्द का मतलब है, ऐसी शक्तियाँ जो या तो पारलौकिक हैं या आत्मिक हैं, जिन्हें तप और साधना से प्राप्त किया जाता है। आठ ही विभूति हैं। जिनके बारे में मत्स्यपुराण (– अध्याय, 99) में विभूति द्वादशी नामक आठवें हरिव्रत का संदर्भ है। गीता में पुनः अष्टांग योग से ही परमगति की प्राप्ति का निर्देश है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।8.13।।

अर्थात् जो पुरुष ओऽम् इस एक अक्षर ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और मेरा स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है वह परम गति को प्राप्त होता है।

शरीर को दुखालय कहा गया है और दुखों के दायक आठ प्रकार के मोह माने गए हैं, जो पुनर्जन्म के कारण होते हैं– आठवीं परम सिद्धि है, जिसे जन्मचक्र का अवरोधन होता है– **"पुनर्जन्म न विद्यते।"** सात लोक और आठवाँ ब्रह्मलोक– **"आब्रह्मभुवनाल्लोकाः।"** ये सब 'पुनरावर्तिन्' आठ पहलु वाले हैं। परमधाम की महत्ता **'यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम' के रूप में सिद्ध की गई है।'**

श्रीकृष्ण का जन्म रात्रि के सात मुहूर्त निकलने के बाद आठवें मुहूर्त में हुआ। तब रोहिणी नक्षत्र तथा अष्टमी तिथि थी (भाद्रपद, कृष्णा 8) यह अद्भुत है। भगवान् कृष्ण के रूप में विष्णुजी ने इस धरती पर आठवाँ अवतार लिया था। वे देवकी और वासुदेव की आठवीं संतान थे। श्रीकृष्णजी की आठ पत्नियाँ थीं, जिन्हें अष्टभार्या कहा गया था।

॥ डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

संस्कृत भाषा के तकनीक संबंधी ग्रन्थों, जैसे शिल्प, वास्तु, खगोल, भूगोल आदि भारतीय शास्त्रों के विशेषज्ञ; लगभग 175 ग्रन्थों के अनुवादक एवं संपादक। प्राचीन भारतीय भाषाओं, सिद्धों और संतों के साहित्य पर प्रामाणिक कार्यों पर हिंदुस्तानी अकादमी का सर्वोच्च गुरु गोरक्षनाथ सम्मान (2021)। पत्रकारिता के बाद लेखक और शिक्षक। श्रेष्ठ शैक्षिक उपलब्धियों पर राजस्थान के राज्यपाल और राष्ट्रपति से सम्मानित।

ब्रह्म काल के अंगों के रूप में युग, अहोरात्र, प्रभव, दिन-रात, अयन, पक्ष, मास और मान की संख्या आठ हैं। (– गीता : 8.23, 25) इन गणनाओं के लिए **'चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी'** जैसा प्रयोग और जगत् जैसे आठ पक्षों का संकेत दिव्यता का दायक प्रतीत होता है।

श्रीकृष्ण का जन्म रात्रि के सात मुहूर्त निकलने के बाद आठवें मुहूर्त में हुआ। तब रोहिणी नक्षत्र तथा अष्टमी तिथि थी (भाद्रपद, कृष्णा 8) यह अद्भुत है। भगवान् कृष्ण के रूप में विष्णुजी ने इस धरती पर आठवाँ अवतार लिया था। वे देवकी और वासुदेव की आठवीं संतान थे। श्रीकृष्णजी की आठ पत्नियाँ थीं, जिन्हें अष्टभार्या कहा गया था। इसके अलावा भगवान् श्रीकृष्ण ने 16,100 रानियों से विवाह किया था और इन 16100 रानियों का योग 8 आता हैं।

उनके उपदेशों में यह अंक अनूठी उपस्थिति देता है। जिसका उदाहरण श्रीमद्भगवदगीता में आठवें अध्याय के महत्त्व से स्पष्ट होता है। आठ का अंक पूर्ण है। आठ के अंक और कृष्ण के महत्त्व के संकेत भागवत से लेकर विष्णु पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, मत्स्य पुराण और आग्नेय पुराण तक सुलभ होता है।

○ ○ ○

लघुकथा

मोहनभोग

क्षमा करना प्रभु! आज भोग नहीं लगा सका.' साथ में बाँके बिहारी के दर्शन कर रहे सज्जन ने प्रणाम करते हुए कहा।

'अरे! आपने तो मेरे साथ ही मिठाई की दुकान से नैवेद्य के लिए पेड़े लिए था, कहाँ गए?' मैंने उन्हें प्रसाद देते हुए पूछा।

पेड़े लेकर मंदिर आ रहा था कि देखा कुछ लोग एक बच्चे की पिटाई कर रहे हैं और वह बिलख रहा है। मुझसे रहा नहीं गया, बच्चे को छुड़ाकर कारण पूछा तो हलवाई ने बताया कि वह होटल से डबल रोटी-बिस्कुट चुराकर ले जा रहा था। बच्चे ने बताया कि उसका पिता नहीं है, माँ बुखार से पीड़ित होने के कारण काम पर नहीं जा रही, घर में खाने को कुछ नहीं है, छोटी बहन का रोना नहीं देखा गया तो वह होटल में चार घंटे से काम कर रहा है। सेठ से कुछ खाने का सामान लेकर घर दे आने को पूछा तो वह गाली देने लगा कि रात को होटल बंद होने के बाद ही देगा। बार-बार भूखी बहन और माँ के चेहरे याद आ रहे थे, रात तक कैसे रहेंगी? यह सोचकर साथ काम करनेवाले को बताकर डबलरोटी और बिस्किट ले जा रहा था कि घर दे आऊँ फिर रात तक काम करूँगा और जो पैसे मिलेंगे उससे दाम चुका दूँगा।

दूसरे लड़के ने उसकी बात की तस्दीक की, लेकिन हलवाई उसे चोर ठहराता रहा। जब मैंने पुलिस बुलाने की बात की तब वह ठंडा पड़ा।

बच्चे को डबलरोटी, दूध, बिस्किट और प्रसाद की मिठाई देकर उसके घर भेजा। आरती का समय हो गया इसलिए खाली हाथ आना पड़ा और प्रभु को भोग नहीं लगा सका।' उनके स्वर में पछतावा था।

'ऐसा क्यों सोचते हैं? हम तो मूर्ति ही पूजते रह गए और आपने तो साक्षात् बाल कृष्ण को मोहन भोग लगाया है। आप धन्य है।' मैंने उन्हें नमन करते हुए कहा।

- आचार्य संजीव वर्मा 'सलिल'

श्रीकृष्ण की चारित्रिक विशेषताएँ

श्रीकृष्ण को महामानव कहा जाता है। यद्यपि 'महामानव' शब्द का प्रयोग आधुनिक अवधारणा है और अमेरिका तथा फ्रांस के बीच शीतयुद्ध से उत्पन्न मानवता की दुर्दशा के क्षण में 'रक्षक' की खोज का परिणाम है तथापि यह उचित है कि श्रीकृष्ण की अलौकिक छवि की अवधारणा के बीच से हम उनके ऐसे स्वरूप पर विमर्श करें, जिस स्वरूप में वे मानवता के 'रक्षक' वास्तव में 'महामानव' हैं।

○ ○ ○

'महामानव' शब्द का प्रयोग साहित्य की दृष्टि से संभवत: पहली बार गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा बंगला साहित्य में हुआ है, जिससे प्रभावित होकर आचार्य द्विवेदी ने 'अशोक के फूल' नामक निबंध संग्रह में भारतवर्ष को महामानवों का समुद्र कहा है। व्युत्पत्तिमूलक, रूढ़ एवं लब्ध अर्थ में महामानव का होने का अर्थ यद्यपि दैवीय चरित्र या अतीन्द्रिय पुरुष के रूप में उद्धरित किया जाता है; परंतु यहाँ महामानव होने का अर्थ लोकरंजक जीवन को वास्तविक रूप में जीने की कला सिखानेवाला एक ऐसा लोकनायक है, जो अपने गुणों के कारण न केवल अनुगमन करने योग्य है, अपितु, वह समस्त प्रकार के श्रेष्ठतम गुणों का परम निधान होने के साथ साथ मनुष्य समाज में आदर्श की स्थापना करता है।

यदि शब्द के इतिहास को खोजने का प्रयास करें, तो हमें बाँग्ला साहित्य में आए इस शब्द की अवधारणा प्रथमतया नीत्ज़े की पुस्तक 'Why I Write Such Good Books' में मिलती है, जिसमें उन्होंने मनुष्यों की वास्तविकता पर चर्चा की, और मानवता को आगे बढ़ाने के लिए उठाए गए जोखिमों के माध्यम से उनकी क्षमता अधिक होने की चर्चा की। यह विश्वास उस व्यक्ति पर केंद्रित नहीं है जो खुद को बेहतर बना रहा है, बल्कि उन मूल्यों को स्थापित करता है जो एक व्यक्ति से अधिक जीवन का अर्थ बनाते हैं और मानवता के व्यापक लक्ष्य के साथ दूसरों के जीवन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं एवं जीवन को एक अर्थवत्ता देने का प्रयास करते हैं। महामानव शब्द मानव या मानव जैसे जीवन रूपों को संदर्भित एवं द्योतित करता है जो मनुष्यों में स्वाभाविक रूप से पाए जाने वाले गुणों और क्षमताओं से अधिक होते हैं। इन गुणों को प्राकृतिक क्षमता,

आत्म-साक्षात्कार या तकनीकी सहायता के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि **"अनन्तो वै मन:"** मन अनन्त है एवं जीवन ही इसकी वास्तविक दिशाएँ निर्धारित करने में सक्षम है क्योंकि मानव के विचार ने पूरे इतिहास में, आदर्श राजनीति, नीति, दर्शन, विज्ञान

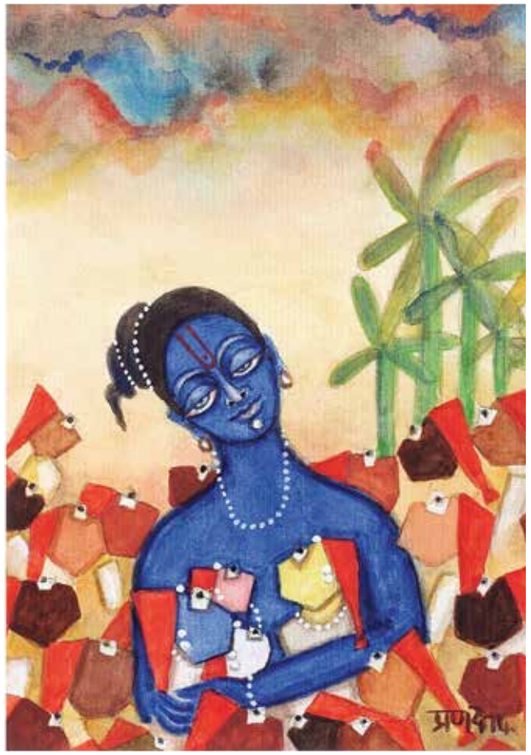

और विभिन्न सामाजिक आंदोलनों को प्रभावित किया है, साथ ही यह मानवीय संस्कृति की विशेषता है। अत:, नीत्ज़े के अनुसार दार्शनिक, राजनैतिक या नैतिक कारणों में अलौकिकता दर्शाने वाला व्यक्ति ही महामानव है।

नीत्ज़े के द्वारा चयनित इस शब्द के पीछे योरोपीय एवं अमरीकी इतिहास के दुखद क्षण विद्यमान हैं, जिनमें मनुष्यता का न केवल ह्रास हुआ, अपितु, मानवीयता के भविष्य पर एक प्रश्नचिह्न खड़ा हो गया। अमरीका एवं फ्रांस का गृहयुद्ध एवं स्वतंत्रता आन्दोलन एवं अन्य योरोपीय जन आन्दोलनों ने पश्चिमी मानवीयता के सामने कतिपय ऐसे गंभीर प्रश्न उपस्थित कर दिए जिनका किसी भी प्रकार सही उत्तर पश्चिमी सभ्यता के पास नहीं था। कारणवश, अंग्रेज़ी एवं योरोपीय कवियों ने जहाँ एक ओर कृष्ण को अपनी रचनाओं का आधार बनाया वहीं पश्चिमी मानसिकता जन्य उपस्थित परिस्थितियों को मनुष्य की ही गलतियों का परिणाम मानकर एक ऐसे चिंतक की अवधारणा को समाज में स्थापित करने का प्रयास किया गया जो न केवल गंभीर समस्याओं का निदान दे सके; अपितु समाज में दीर्घकालीन शांति को भी समाज में स्थापित कर सके।

इस आलेख में प्रचलित अवधारणा के विपरीत श्रीकृष्ण के उस रूप की चर्चा करना उचित होगा जो मनुष्य मात्र के जीवन से संपृक्त होकर मनुष्य मात्र को जीवन के श्रेष्ठतम अंश की ओर प्रेरित करता है। उदाहरण के लिए हम 'श्रीमद्भगवद्गीता' को ले सकते हैं, जो मनुष्य जीवन को बेहतर बनाने का कृतसंकल्प है।

श्रीकृष्ण चरित्र में लोकरंजक तत्त्व

यदि भारतीय परंपरा की सांस्कृतिक चेतना का ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन करें तो मनुष्यता की रक्षा के लिए आर्ष प्रतिभा ने जिन शब्दों का आविष्कार किया गया, उनमें से वैदिक काल में प्रयुक्त होनेवाले लोकनायक मनुष्य के लिए ऋषि, धीर एवं पुरुष आदि संज्ञाओं के रूप मिलते हैं । परवर्ती काल में पुरुषोत्तम, महात्मा, लोकनाथ, सिद्ध संत एवं आचार्य आदि संज्ञाओं का उल्लेख मिलता है। ये सभी लोग ऐसी चेतना का अवतरित रूप थे, जो अपने लिए न जीकर, लोक की सुप्रतिष्ठा के लिए जिए एवं आहूत हुए। लेकिन 'महामानव' संज्ञा का आविष्कार मेरे विचार से आधुनिक भारत के इतिहास की ज्वाला का पश्चिमी बोध के संपर्क में आने के कारण हुआ। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी 'भारत महिमा' नामक कविता में 'महामानवता का सागर' कहा, जिसमें समस्त विरोधी तत्त्वों के आत्मसात् करने का सामर्थ्य है।

यह उचित ही है कि आज के संदर्भ में, महामानव के संदर्भ में, भारत की आस्था के शिखर पुरुष श्रीकृष्ण का मानवता के उद्धार के लिए नए सिरे से आलोचना एवं पुनर्मूल्यांकन किया जाए। यद्यपि यह बात महत्त्वपूर्ण है कि भारतीय जनमानस श्रीकृष्ण की अलौकिक छवि है जिनके स्मरण मात्र से ही समस्त पापों का नाश होता है एवं वे हर्ष, सुख और सुखमय ऐश्वर्य का विधान करने वाले जिसका वर्णन

नीत्ज़े के द्वारा चयनित इस शब्द के पीछे योरोपीय एवं अमरीकी इतिहास के दुखद क्षण विद्यमान हैं, जिनमें मनुष्यता का न केवल ह्रास हुआ, अपितु, मानवीयता के भविष्य पर एक प्रश्नचिह्न खड़ा हो गया। अमरीका एवं फ्रांस का गृहयुद्ध एवं स्वतंत्रता आन्दोलन एवं अन्य योरोपीय जन आन्दोलनों ने पश्चिमी मानवीयता के सामने कतिपय ऐसे गंभीर प्रश्न उपस्थित कर दिए जिनका किसी भी प्रकार सही उत्तर पश्चिमी सभ्यता के पास नहीं था।

श्रीमद्भगवद्गीता के दशम एवं एकादश अध्याय में विशद रूप से हमें देखने को मिलता है। वे अंतर्यामी, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान एव परम दयालु हैं एवं समूचा जनमानस आज भी उन्हें "लोकनायक" के दिव्य रूप में अपार श्रद्धा से पूजता है।

श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व एवं कृतित्व बहुआयामी एवं बहुरंगी है, अर्थात् बुद्धिमत्ता, चातुर्य, युद्धनीति, आकर्षण, प्रेमभाव, गुरुत्व, सुख, दुख और न जाने कितनी विशेषताओं एवं विलक्षणताओं को श्रीकृष्ण का चरित्र स्वयं में समेटे है। एक सहृदय भक्त के लिए श्रीकृष्ण भगवत् रूप में पूजनीय तो हैं ही, साथ में वे गुरु रूप में भी वंदनीय हैं। वे एक ऐसे गुरु हैं, जो साधक को सही एवं व्यापक रूप में जीवन जीने की कला सिखाते हुए साधक को जीवन के श्रेष्ठतम मार्ग चुनने का आग्रह करते हैं जिसकी स्वीकृति सार्वभौम है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व की विविध विशेषताओं के चलते ही भारतीय-संस्कृति में महानायक का पद प्राप्त किया। एक ओर वे राजनीति के पूर्ण ज्ञाता एवं दूरदर्शी हैं तो दूसरी ओर वे दर्शन एवं मानवीय मूल्यों के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने धार्मिक जगत् में भी नेतृत्व करते हुए ज्ञान-कर्म-भक्ति का समन्वयवादी साधना को प्रवर्तित करने का सफ़ल प्रयास किया जोकि अपने आप में एक अद्भुत एवं महत् कार्य है। अपनी इन्हीं योग्यताओं के आधार पर उन्हें युग-पुरुष माना जाता है, जो आगे चलकर भारतीय संस्कृति में युगावतार के रूप में स्वीकृत हुए। वे दार्शनिक, चिंतक, गीता के माध्यम से कर्म और सांख्य योग के संदेशवाहक और महाभारत युद्ध के नीति निर्देशक थे किंतु सरल-निश्छल ब्रजवासियों के लिए तो वे रास रचैया, माखन चोर, गोपियों की मटकी फोड़ने वाले नटखट कन्हैया और गोपियों के चितचोर हैं एवं बाल रूप में नंद एवं यशोदा के आनन्द स्रष्टा के रूप में हमारे सामने आते हैं। इन्हीं लीलाओं के चलते हुए कृष्ण को महामानव के रूप में माना जा सकता है।

बाल रूप की यदि हम बात करें तो नंद-यशोदा के घर में पलनेवाले इसी तेजस्वी पुंज कृष्ण का जन्म ही अत्याचारियों का अंत करने के लिए हुआ था परंतु दूसरी ओर कृष्ण की बाल-लीलाओं से संपूर्ण ब्रजमण्डल के मोहित और रोमांचित होने का वर्णन हमें विभिन्न काव्य रूपों में मिलता है। सूरदास की बाल लीला के पदों में कभी वे घुटनों के बल दौड़ते हैं और किलकारियाँ मारते हैं, तो कभी माखन-चोरी करते हुए गोप-गोपिकाओं, नंद, यशोदा आदि का मन मोहते हैं तो वहीं दूसरी ओर गो-चारण, मुरली वादन, वनविहार के समय वे ब्रज के पूर्ण नायक के रूप में हमारे सामने होते हुए सभी को चमत्कृत करते हैं। सूरदास का समस्त काव्य श्रीकृष्ण के इसी रूप से प्रभावित है एवं कृष्ण के बाल रूप से प्रभावित होकर आज भी जन्माष्टमी के शुभ अवसर पर बच्चों को बाल रूप में कृष्ण रूप में सज्जित करने की प्रथा विद्यमान है।

महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि बाल रूप में ही जहाँ एक ओर वे कालिय नाग का दर्प मर्दन कर ब्रज की रक्षा करते हैं तथा कंस द्वारा भेजे गए पूतना, बकासुर, अघासुर, केशी जैसे दुष्ट दानवों को मार कर समस्त ब्रज मंडल का उपकार करते हैं वहीं दूसरी ओर वे इंद्र के कोप से संपूर्ण ब्रजवासियों को बचाते हैं। वे मथुरा मण्डल में चाणूर, मुष्टिक जैसे दुष्ट एवं अधर्मी व्यक्तियों के साथ-साथ कुट, शल, तोषक का वध करते हैं जो लोक जीवन धारा के विरुद्ध जाने का प्रयास कर रहें हैं। कंस तो कृष्ण की शक्ति से इतना घबरा गया कि वह श्रीकृष्ण के साथ-साथ सम्पूर्ण ब्रज और गोप-ग्वालों की हत्या करना चाहता है और वे शक्तिशाली कंस का साहस से सामना कर उसका वध कर देते हैं जिसके परिणामस्वरूप मथुरा की प्रजा खुशी से झूम उठती है। देवकी, वसुदेव एवं अपने नाना महाराज उग्रसेन को कारावास से मुक्त कर पुन: महाराज उग्रसेन को राज्य सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर धर्म एवं मर्यादा की पुन: स्थापना कर समाज में शांति को जिस प्रकार प्रतिष्ठित करते हैं वह कार्य अपने आप में न केवल श्लाघनीय हैं अपितु मानव मात्र के कल्याण हेतु समाज में धर्म की प्रतिष्ठा करता है। दूसरी ओर बाल अवस्था में ही जरासंध, कालवयन आदि आततायियों को पराजित करते हुए कृष्ण यादवों, गाय-बैलों आदि को द्वारिकापुरी भेज कर समस्त प्रजा का त्राण करते हैं। इन्हीं संदर्भों में हमें यह समझने की आवश्यकता

> वास्तव में वे ईश्वर का पूर्णावतार होते हुए भी मानवीय जीवन के समीप लगते हैं। इसीलिए श्रीकृष्ण को मानवीय भावनाओं, इच्छाओं और कलाओं का प्रतीक माना गया है। श्रीकृष्ण जीवन-दर्शन के पुरोधा बनकर आए थे। उनका 'अथ' से 'इति तक का पूरा जीवन ही पुरुषार्थ की प्रेरणा है।

है कि श्रीकृष्ण असीम बल के निधान हैं। उनका बल ऐसा है जो जीव मात्र की रक्षा करने के लिए प्रतिबद्ध है एवं शरणागत की रक्षा करता है। वास्तव में श्रीकृष्ण का यह स्वरूप अतिमानव अथवा अतीन्द्रिय न हो कर लोकरंजकत्व द्योतित करता है कि यदि मनुष्य को आत्यन्तिक दुख से छुटकारा चाहिये तो **"केवलम् श्रीकृष्ण शरणम् मम।"**

श्रीकृष्ण का महामानव रूप हमें दो संदर्भों में देखने को मिलता है, जिसमें प्रथमतया वे समाज में अभय की स्थापना के लिए प्रयत्न करते हैं। वे एक ओर चीरहरण से द्रौपदी की रक्षा करते हैं, वहीं दूसरी ओर नरकासुर वध के माध्यम से प्राप्त सोलह हजार स्त्रियों की मुक्ति से नारी सम्मान एवं नारी प्रतिष्ठा के मानक समाज के सामने रखते हैं। शिशुपाल वध के माध्यम से श्रीकृष्ण के चरित्र में धैर्य, तितिक्षा आदि गुणों का हमें व्यापक परिचय मिलता है। वहीं दूसरी ओर उनका दूसरा रूप अर्जुन को उपदेश देने वाले के रूप में प्रसिद्ध है, जहाँ वे अर्जुन को स्थितप्रज्ञ होने का उपदेश देते हैं। श्रीकृष्ण पाण्डवों के परम हितैषी हैं, उनका विशेषकर अर्जुन के प्रति अगाध स्नेह एवं मित्रता अपने आप में अपूर्व है। इसी स्नेह के कारण उन्होंने कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन का सफ़लतापूर्वक दिशा निर्देशन किया अपितु अर्जुन को कर्मयोग की शिक्षा दी। अत:, महाभारत के युद्ध में निर्णायक भूमिका निभाने वाले कृष्ण रक्षक, मित्र, संकटमोचन, उपदेशक, गुरु, ईश्वर, कर्म तथा योग की शिक्षा देने वाले योगेश्वर हैं। सुदामा के संदर्भ में यदि श्रीकृष्ण के सखा रूप में जो तथ्य हमारे सामने आते है वे न केवल चौंकाने वाले हैं अपितु मित्रता की पराकाष्ठा को द्योतित करते हैं, क्योंकि सुदामा श्रीकृष्ण से मिल कर जब अपने घर पहुँचते हैं तो श्रीकृष्ण कृपा से ही टूटी झोंपड़ी के स्थान पर उन्हें एक ऐसा वैभवशाली महल मिलता है जो सभी प्रकार की सुख एवं सुविधाओं से पूर्ण है।

वस्तुत: श्रीकृष्ण ने समस्त मनुष्य जाति को नया जीवन-दर्शन दिया एवं जीवन जीने की सही शैली सिखलाई। उनकी जीवन-कथा चमत्कारों से भरी है जिनका महामानवीय संदर्भ में मूल्यांकन किया जा सकता है परन्तु उससे पात्र का कलेवर बढने के साथ साथ उनके महामानवीय रूप के बृहद दर्शन हो सकते है। वस्तुत: कृष्ण सफल, गुणवान और दिव्य मनुष्य होने के साथ-साथ कहीं धीरोदात्त रूप में हमारे सामने आते हैं तो कहीं वे धीर प्रशान्त रूप में हमारे सामने आते है। उनका वेणुवादन चराचर प्रकृति को मोहित करने वाला होने के कारण हमारे सामने धीरललित रूप भी प्रस्तुत करता है। वास्तव में वे ईश्वर का पूर्णावतार होते हुए भी मानवीय जीवन के समीप लगते हैं। इसीलिए श्रीकृष्ण को मानवीय भावनाओं, इच्छाओं और कलाओं का प्रतीक माना गया है। श्रीकृष्ण जीवन-दर्शन के पुरोधा बनकर आए थे। उनका 'अथ' से 'इति तक का पूरा जीवन ही पुरुषार्थ की प्रेरणा है।

श्रीकृष्ण ने तत्कालीन डर से जमे हुए समाज में न केवल संवेदना, संघर्ष, प्रतिक्रिया और विरोध के प्राण फूँके अपितु समाज में सत्य एवं धर्म की प्रतिष्ठा भी की। अत:, आवश्यकता यह है कि श्रीकृष्ण के अतिमानवीय पक्ष के स्थान पर उनके अनुकरणीय पक्ष की ओर ध्यान दिया जाए ताकि फिर जटिलता के चक्रव्यूह से समाज को निकाला जा सके। उनका संपूर्ण व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व मानवीय समाज के धार्मिक इतिहास बोध का एक अमिट भाग बन चुका है। उनके द्वारा प्रतिपादित संतुलित एवं समरसता की भावनावाली जीवन दृष्टि ने उन्हें महामानव बनाया है जिसके परिणामस्वरूप आज भी भारतीय समाज में कृष्ण समादरणीय स्थिति में होते हुए समग्र रूप में अभिवन्दनीय एवं अभिपूजनीय हैं।

◦ ◦ ◦

॥ डॉ. आशुतोष अंगिरस

प्राध्यापक (संस्कृत), 'सनातन धर्म कॉलेज, अंबाला, निदेशक, 'सनातन धर्म मानव विकास और प्रशिक्षण केंद्र', प्रबुद्ध लेखक। अनेक शोध पत्रों की प्रस्तुति और सेमिनारों के आयोजक संस्कृत और आध्यात्मिक साहित्य सलाहकार।

भारतीय सांस्कृतिक एकता के प्रतीक: कृष्ण

आज श्रीकृष्ण विश्व में आदर्श महानायक के रूप में स्थापित हो चुके हैं। कृष्ण के साथ अभिन्न ब्रज भी अपनी नि:सीम हो चुका है। रासेश्वर, द्वारकाधीश, योगेश्वर, पूर्णावतार आदि विविध रूपों में श्रीकृष्ण लोक, साहित्य, दर्शन तथा राजनीति शास्त्र में अपने ही रंग में सबको रंगकर एकता के प्रतीक बन चुके हैं। आइए, श्रीकृष्ण के चरित की इन विविधताओं की धारा में डुबकी लगाएं...

◦ ◦ ◦

श्रीकृष्ण लोक भाषा, साहित्य एवं संस्कृति की नाभि हैं। यहीं से समस्त सांस्कृतिक लोक विधाओं का सृजन होता है और विसर्जन भी। उनके पार्श्व में 'कृष्ण' शब्द की जो व्युत्पत्ति है, जो इसका समर्थन करती है– **"प्रलयकाले सर्वान् स्वकुक्षे कर्षति इति कृष्णः।"** प्रलय काल में जो सब कुछ अपने कुक्षि अर्थात नाभि में खींच लेता है; लय स्थित कर लेता है, वह कृष्ण है इसलिए वह सृजन भी है और विसर्जन भी। कृष्ण को खोजना भारत का बचपन खोजना है; भारत का यौवन ढूँढना है, भारत की वृद्धावस्था को खोजना है; क्योंकि बचपन शुद्ध होगा तो यौवन प्रबुद्ध होगा व बुढ़ापा सिद्ध होगा। यही शुद्धता, प्रबुद्धता तथा सिद्धता लोक साहित्य में श्रीकृष्ण के रूप में जानी जाती है। इसकी एक लंबी परंपरा है।

भारत को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए तथा भारत के जनजीवन को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए कृष्ण का बहुआयामी व्यक्तित्व रहा है। कृष्ण तथा उनकी ब्रजभूमि में जिन तत्त्वों ने संपूर्ण भारत को एकता के सूत्र में आबद्ध कर रखा है, उनमें ब्रज में अवतरित भगवान् श्रीकृष्ण धर्म, भाषा, साहित्य, संस्कृति, कला और राजनीति विज्ञान आदि प्रमुख हैं। इन सभी तत्वों का विश्लेषण विवेचन करके देखें तो उपयुक्त तथ्य प्रमाणित हो जाएँगे। ब्रज में कृष्ण के जितने आराधक हैं, उससे कहीं अधिक संपूर्ण विश्व में फैले हुए हैं।

भगवान् कृष्ण का अस्तित्व और व्यक्तित्व समस्त भारत को

> श्रीकृष्ण और उनके क्रियाकलापों का समस्त भारत पर अद्वितीय प्रभाव रहा है, जहाँ भी श्रीकृष्ण भगवान् हैं, उनकी लीला का गुणगान है, वही ब्रज है। ब्रज और श्रीकृष्ण अभिन्न हैं, कृष्ण के बिना न ब्रज की कल्पना की जा सकती है, न ब्रज के बिना कृष्ण की।

प्रभावित किए हुए है। भगवान् श्रीकृष्ण ने राष्ट्र की एकता को स्थिर रखने का प्रयास किया। उन्हें ज्ञात था कि यदि भारत को एकता के सूत्र में नहीं बाँधा गया तो वह छिन्न-भिन्न हो कर विनष्ट हो जाएगा। अतः, विद्या ग्रहण करने हेतु मध्य प्रदेश अवंतिकापुरी अर्थात वर्तमान उज्जैन में गए। सुदूर पूर्व में भोमासुर का वध करके वहाँ की कन्याओं से विवाह कर सुदूर पूर्व तक भारत को सुदृढ़ बना दिया। विदर्भ राज की कन्या रुक्मणी का पाणिग्रहण कर आपने अपने ब्रज के क्षेत्र का प्रभाव का विस्तार किया। कृष्ण के कारण ही नाथद्वारा और कांकरोली राजस्थान के तीर्थ बने हुए हैं और वहाँ ब्रज की सीधी झाँकी प्राप्त हो जाती है। प्रेम योगिनी मीरा ने गिरधर गोपाल के गीत गाकर राजस्थान में वह प्रेम रस की धारा प्रवाहित की जिसने समस्त वीरभूमि को ' मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई' जैसे पदों की रचना कर कृष्ण प्रेम से मरुभूमि को प्रेम व भक्ति के रस से आप्लावित कर दिया। गुजरात का तार एवं गरबा नृत्य कृष्णकालीन समय का सबसे सुंदर उदाहरण है। गुजरात को भगवान् श्रीकृष्ण ने रणछोड़दास बनकर बृज की ओर आकृष्ट किया। कंस वध के पश्चात् उसके संबंधियों एवं मित्रों ने मिलकर मथुरा पर आक्रमण किया। जरासंध एवं कालयवन जैसे दुर्दांत दानवों के साथ युद्ध करने से हजारों प्राणियों की हिंसा होगी, ऐसा विचार कर भारत के पश्चिमी क्षेत्र को पूर्व से संगठित करने के विचार से श्रीकृष्ण ने सपरिवार मथुरा का परित्याग करना ही सबसे श्रेयस्कर समझा। मथुरा से चलकर डाकोर नामक स्थान पर विश्राम किया। वह स्थान आज गुजरात में तीर्थ स्थान बना हुआ है। अनेकों भक्तजन भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन तथा स्मरण हेतु वहाँ जाते हैं। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने विशुद्ध पश्चिम में समुद्र के किनारे द्वारिकापुरी की स्थापना की। यह प्रदेश चार प्रसिद्ध पुरियों में से एक है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने निकटतम भाई शिशुपाल को मारकर कलिंग (उड़ीसा) को केंद्रीय राज्य के अधीन बना दिया क्योंकि वह राष्ट्र विरोधी प्रवृत्तियों में संलग्न था।

दक्षिण के तैलंग ब्राह्मण श्रीकृष्ण की भक्ति से सराबोर होकर ब्रज में आए तथा उन्होंने यहाँ पुष्टिमार्गीय संप्रदाय की स्थापना की।

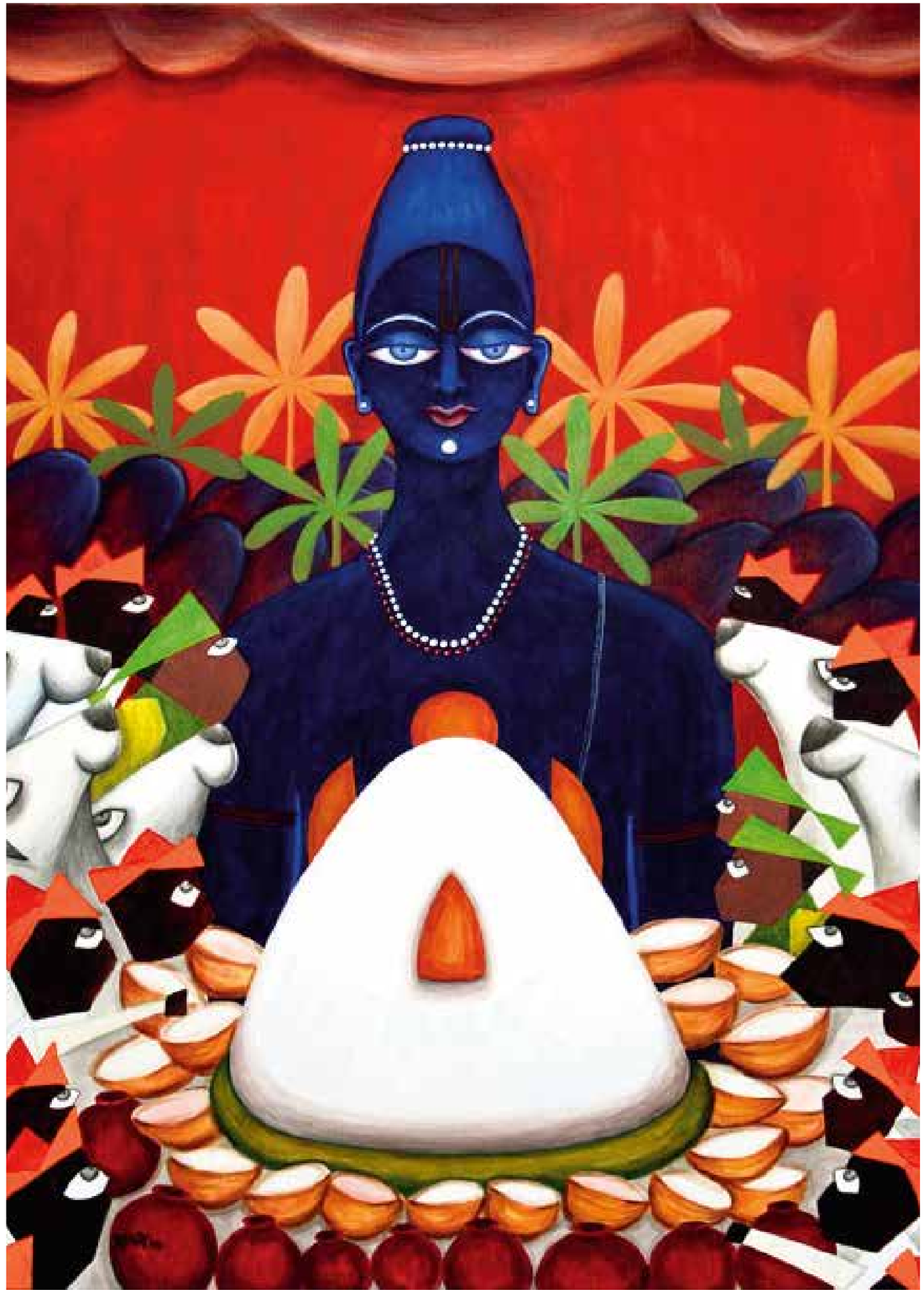

हमें वैमनस्यता, राग-द्वेष से दूर होकर एक दूसरे से सिर्फ प्रेम ही करना चाहिए तथा प्रेम ही मनुष्य मात्र का सर्वोपरि आभूषण है, यह संदेश देते हैं कृष्ण। कृष्ण की सम्पूर्ण भारत ही नहीं विश्व के जनमानस के हृदयों में उपस्थिति मानव एकता को सिद्ध करती है। यह स्पष्ट है कृष्ण के संदेश समस्त भारत के कण-कण में हैं। जो भारत को सांस्कृतिक रूप से एकता के सूत्र में बाँधते हैं।

नाथद्वारा इस संप्रदाय की पूजा पद्धति तथा कृष्ण भक्ति का सबसे प्रमुख उदाहरण है जो संपूर्ण गुजरात व राजस्थान में श्रीनाथजी की भक्ति से जनमानस को सराबोर कर रहा है। श्रीकृष्ण और उनके क्रियाकलापों का समस्त भारत पर अद्वितीय प्रभाव रहा है, जहाँ भी श्रीकृष्ण भगवान् हैं, उनकी लीला का गुणगान है, वही ब्रज है। ब्रज और श्रीकृष्ण अभिन्न हैं, कृष्ण के बिना न ब्रज की कल्पना की जा सकती है, न ब्रज के बिना कृष्ण की। भक्ति का रसपान जब नरसी मेहता को ज्ञात हुआ सौराष्ट्र में उनके प्रेम की धारा बहने लगी। सौराष्ट्र के इन भक्तों की भावना का ही यह परिणाम हुआ कि श्रीकृष्ण को सांवलिया सेठ बनाकर नरसी भगत की हुंडी देनी पड़ी और उसकी पुत्री नानी बाई का भात करना पड़ा। सारे भारत में कृष्ण का 'नरसी भात' गाया जाता है।

राजनीतिक क्षेत्र में भी श्रीकृष्ण ने समस्त विश्व को संदेश दिया कि प्रजातंत्र ही सर्वोपरि है प्राचीन काल में मथुरा जनपद में गणतंत्र राज्य स्थापित था तथा प्रजातांत्रिक विधि से यहाँ शासन चलाया जाता था। कृष्ण की गीता सारे भारत में पढ़ी जाती है। श्रीमद्भागवत की कथा धर्मप्राण हिंदू बड़ी भक्ति और श्रद्धा के साथ सुनते हैं। भगवान् का भोग, भजन, पूजन, श्रृंगार, झूला भारत के विभिन्न प्रांतों में ब्रज की उपासना पद्धति का भी अनुकरण किया जाता है। कृष्ण को बाल गोपाल के रूप में भोग लगाया जाता है।

होली और कृष्ण की जन्माष्टमी विशेष पर्वों के रूप में भारत के समस्त क्षेत्रों और राज्यों में मनाए जाते हैं, जब भी होली मनाई जाती है, जहाँ भी होली मनाई जाती है वहाँ यही गीत गाया जाता है–

'आज बिरज में होली रे रसिया,
कौन गाँव के कुँवर कन्हैया,
कौन गाँव राधा गोरी रे रसिया'।

इस गीत में समस्त भारत की सांस्कृतिक एकता को अपने प्रेम के सूत्र में पिरो रखा है। मणिपुर में होनेवाला बसंत रास भी कृष्ण की लीलाओं से अनुप्राणित है। कहा जाता है कि कृष्ण की आठवीं पटरानी सत्यभामा वहीं से थी तथा कृष्ण ने वहाँ भी अपनी रासलीला की नृत्य कला को लोगों को सिखाया। वर्तमान में भी उनकी लीला का अनुकरण कलाकारों द्वारा बसंत रास के रूप में किया जाता है। भारत के लोक, जन-जीवन में कृष्ण प्राण के रूप में अवस्थित हैं। प्रातःकाल उठते ही लड्डू गोपाल की सेवा-अर्चना करने का विधान समस्त देश में है। भगवान् श्रीकृष्ण की गीता और उनके संदेश समस्त विश्व में मानवता का संदेश देते हुए प्रतीत होते हैं।

श्रीकृष्ण ने मनुष्य मात्र को कर्म का संदेश दिया। उस कर्म के संदेश को मानते हुए ही सच्चा मानव विकास की ओर अग्रसर होता है। श्रीकृष्ण ने हमें अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को उत्सव की तरह जीने का संदेश दिया। श्रीकृष्ण ने स्वयं श्रीमद्भगवद्-गीता में कहा है कि "मैं अविनाशी स्वरूप अजन्मा होने पर भी तथा सब भूत प्राणियों का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को आधीन करके योग माया से प्रकट होता हूँ। हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब मैं अपने रूप की रचना करता हूँ अर्थात प्रकट होता हूँ। साधु पुरुषों का उद्धार दूषित कर्म करने वालों का नाश तथा धर्म स्थापना करने के लिए युग युग में मैं प्रकट होता हूँ।"

श्रीकृष्ण की लीला में दो प्रकार के तत्त्व मिलते हैं। ईश्वरी एवं माधुरी। श्रीकृष्ण को 'पूना भतार' कहा गया है। उनकी लीलाओं का श्रवण, गायन, मनन एवं चिंतन पूर्ण मोक्ष का दाता है। इन लीलाओं में ज्ञान-विज्ञान, भक्ति-अध्यात्म, दर्शन-योग, निष्काम कर्म आदि विविध विषयों का समाहार मिलता है। समाज के अनेक आनंद अपने अपने अनुकूल इनके रस को पा सकते हैं, परंतु भक्ति इन में प्रधान रस है। यही भक्ति संपूर्ण भारत की सांस्कृतिक एकता का मूल आधार बनी हुई है। कृष्ण की लीलाएँ भारतीय संस्कृति के मुख्य स्तंभ हैं।

श्रीकृष्ण से संबंधित अनेक विचारों को अध्ययन करने पर हम देखेंगे कि कृष्ण का जन्म भी अत्यंत वैज्ञानिकता के साथ था, भादों की अष्टमी अंधकार में अंधकार, व्रत, रात्रि, उसकी भयावहता, कंस का कारागार, उफनती यमुना नदी, राजनीतिक कुव्यवस्था आदि। इन सभी प्राकृतिक प्रतीकों के द्वारा जन्म की लीला का होना अपने आप में एक अलग संदेश देता है। कंस का कारागार तत्कालीन राजनीतिक दल व्यवस्था का द्योतक था। कारावास में बंद देवकी-वसुदेव अहिंसा और सत्य के प्रतीक हैं, उनके पहरेदार हिंसा और असत्य के, कारागार कठोर अत्याचार को इंगित करता है, पावस ऋतु सामाजिक रुग्णता का प्रतीक है, तदनंतर भादों की अष्टमी दुखों की काली रात है, अर्ध निशा उनकी पराभव की मध्यांतर स्थिति है, कृष्ण का प्रादुर्भाव महा उत्सव रूपी प्रकाश है जिसके आते ही समस्त विरोधी तत्त्व क्षीण हो जाते हैं। अतः, पहरेदार सो जाते हैं अर्थात् हिंसा और असत्य का पराभव हो जाता

उनकी लीलाओं का श्रवण, गायन, मनन एवं चिंतन पूर्ण मोक्ष का दाता है। इन लीलाओं में ज्ञान-विज्ञान, भक्ति-अध्यात्म, दर्शन-योग, निष्काम कर्म आदि विविध विषयों का समाहार मिलता है। समाज के अनेक आनंद अपने अपने अनुकूल इनके रस को पा सकते हैं, परंतु भक्ति इन में प्रधान रस है। यही भक्ति संपूर्ण भारत की सांस्कृतिक एकता का मूल आधार बनी हुई है।

है। तालों का खुलना जैसे अत्याचार का आत्मसमर्पण हो जाना है। वसुदेव रूपी सत्य कृष्ण रूपी महा सत्य प्रकाश को लेकर गोकुल की राह पकड़ते हैं।

वह कुल क्या है? इंद्रिय समूह, जहाँ सत्य प्रकाश को सौंप देने चल पड़ता है; क्योंकि इंद्रिय समूह के उद्भव होने से ही यह क्रांति संभव है। मार्ग में यमुना का भयंकर रूप युग की विषम प्रवाह का प्रतीक है, सामने सिंह दहाड़ता है जो भावी आकांक्षाओं और आपत्तियों का गर्जन स्वर है, वसुदेव यमुना में प्रवेश करते हैं, जैसे अँधेरे में प्रकाश पुंज को लेकर कूद पड़ते हैं। सिर पर यमुना जल का प्रवाह युग का घोर विरोध और नीच हो जाना है, अत्याचारी युग की प्रकृति का शंखनाद है। वसुदेव अपने लक्ष्य पर पहुँच कर ही दम लेते हैं, जहाँ से वे यशोदा की कन्या को ले आते हैं। कन्या शक्ति का रूप है। वसुदेव प्रकाश को सुरक्षित करके शक्ति लाए, यही शक्ति अत्याचार के शक्तिपुंज कंस का संहार करेगी। यह शक्ति तत्कालीन पीड़ित समाज की, जनता जनार्दन की मानसिक शक्ति है जो कारागार की एकांतका में गंभीर चिंतन का कारण भूत है, जो युग के दर्प का प्रबल प्रतिनिधि है। कंस कारागार में भी पहरे के भीतर देखता है कि क्रांति का बीज अंकुर दे चुका है, तड़प उठता है और कन्या को पत्थर पर पटककर मारता है। उसका अभिमान देख नहीं पाता कि वसुदेव का आठवाँ वसु जन्म ले चुका है, धरती की कोख हरी हो चुकी है। अतः, कन्या रूपी क्रांति का भी वह संहार करना चाहता है, किंतु, क्रांति कभी मरी है भला?

जन जन के मानस में जब अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह फूटता है तो स्वयं विधाता भी उसे उसे अस्तित्वहीन करने की क्षमता नहीं कर पाता,कंस तो बेचारा मानव मात्र है। देवकी के बालकों के हत्याकांड की जो लंबी शृंखला है, वह अपने अंत को स्वयं बुला रहा था क्योंकि हिंसा की पराकाष्ठा जन संगठन को आमंत्रण देती है, जो कृष्ण रूपी प्रकाश में पल्लवित और सफलीभूत होता है।

इस प्रकार, कृष्णजन्म की यह कथा मनोवैज्ञानिक रूप से अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है और यही कथा भारत की एकता को मोतियों की माला के रूप में संगठित किए हुए है। भगवान् श्रीकृष्ण के किसी भी चरित्र से, उनका संसार के किसी भी पदार्थ से राग-द्वेष सिद्ध नहीं होता है बल्कि उसके विपरीत उनके चरित्र में आरंभ से समाप्ति तक राग-द्वेष मान्यता तथा पूर्ण वैराग्य के ही दर्शन होते हैं। बाबा नंद, माता यशोदा, ग्वाल-बालों और गायों के साथ असीमित बढ़ा हुआ उनका यह महान प्रेम, जिसमें इन सबमें से एक व्यक्ति भी परस्पर एक क्षण के लिए एक दूसरे के विरह को नहीं सह सकता था। 'धनुष यज्ञ' दर्शन के बहाने अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण-बलराम को मथुरा पहुँचा दिए जाने पर एक ही झटके में धनुष टूट जाता है। वह ऐसा टूटा कि फिर कभी भी उस जीवन में वे पुनः वृंदावन की सूरत ही नहीं देख पाए।

उनका रासलीला के परम रस में निमग्न होते हुए भी वहाँ से अंतर्ध्यान हो जाना भी सांसारिक पदार्थों से ऊपर वैरागी होने का सूचक है। यही सब कृष्ण के संदेश जनमानस में प्रेम की मनुष्य मात्र से प्रेम करने की अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं कि यह जीवन क्षणभंगुर है। अतः, हमें वैमनस्यता, राग-द्वेष से दूर होकर एक दूसरे से सिर्फ प्रेम ही करना चाहिए तथा प्रेम ही मनुष्य मात्र का सर्वोपरि आभूषण है, यह संदेश देते हैं कृष्ण। कृष्ण की सम्पूर्ण भारत ही नहीं विश्व के जनमानस के हृदयों में उपस्थिति मानव एकता को सिद्ध करती है। यह स्पष्ट है कृष्ण के संदेश समस्त भारत के कण-कण में हैं। जो भारत को सांस्कृतिक रूप से एकता के सूत्र में बाँधते हैं।

○ ○ ○

॥ डॉ. सीमा मोरवाल

ब्रज की सुप्रसिद्ध लोक गायिका; संस्कृति, विद्या व साहित्य में अनेक पुस्तकों का लेखन; आकाशवाणी मथुरा सेबी हाई ग्रेड कलाकार।

कृष्ण जन-जन में कण-कण में

श्रीकृष्ण जन-जन में फैले हैं; कण-कण में व्याप्त हैं। उनका कर्म-संदेश कहीं न कहीं दूर होता जा रहा है। हमने उनके द्वारा उपदिष्ट कर्म को जप मान लिया है और उस व्यापकता से दूर होते जा रहे हैं। आवश्यकता है कि हम श्रीकृष्ण के नामों की व्यंजना को समझें और उसे अपने जीवन में उतार कर अनुभव प्राप्त करें।

> कृष्ण सीमित नहीं समग्र हैं। कृष्ण ने कर्म करते हुए उसे निरंतर करते रहने का उपदेश किया लेकिन हम उनके 'कर्म' को 'जप' मान बैठे। हमने कृष्ण के नामों की व्यंजना को समझा लेकिन उसे आचरण में नहीं उतार पाए।

'कृष्ण' का एक अर्थ है, जिसका स्वभाव आकृष्ट करने का हो। यही कारण है कि इतिहास की चादर समय के पथ पर बिछती चली जाती है, युग बीतते जाते हैं लेकिन कृष्ण कभी अतीत नहीं होते। उनका आकर्षण न केवल अक्षुण्ण बना रहता है बल्कि प्रत्येक समय की सर्जनात्मकता इस आकर्षण को विस्तार देती रहती है। जाने कितने शिल्प, कितने चित्र और कितने काव्य कृष्ण को नित्य रचते हैं उनकी गिनती नहीं की जा सकती।

कृष्ण गणना के ओर-छोर से परे हैं, वे अगणित और अछोर हैं। ऐसा क्यों है ? इसलिए कि कृष्ण विरोधों के समन्वय हैं। वे द्वन्द्वात्मक भी हैं, निर्द्वन्द्व भी, मोह के प्रतिरूप भी हैं तो विरक्ति के साकार स्वरूप भी, वे गीता के आख्याता ईश्वर हैं तो, प्रभास क्षेत्र में मामूली बहेलिये के तीर से प्राण त्याग देने वाले साधारण मनुष्य भी।

उनके जैसा कोई उजला प्रतीक नहीं, जिसकी पूजा 'श्याम' कहकर की जाती हो। वे ऐसे श्याम हैं, जिनके कारण उजाले की पहचान बनती है।

कृष्ण इतिहास के इकलौते अपवाद चरित्र हैं। वे तुलनीय हैं ही नहीं। विलक्षण है उनका कृतित्व जो जोड़ने और तोड़ने दोनों का जीवन्त उदाहरण है। वे जमीन से, यमुना के तट, तमाल के तरुवर, गाँवों, ग्वालों, गोपियों तथा गायों से जुड़े, बड़ियारी आँखों वाली वृषभानु सुता राधा से जुड़े, जिसके ग्रामीण भोलेपन को कायदे से लजाना भी नहीं आता था और जो ब्रज की वीथियों में पलाश के फूलों के रंग से इस साँवरे को नहलाकर होलियों को अपने नाम कर लिया करती थी।

जहाँ तक तोड़ने का प्रश्न है तो कृष्ण से बड़ा कोई निर्मम नहीं, जिसने जेल की जंजीरें, प्रसूति-गृह के द्वार, छकड़े और पेड़ से लेकर कालिय नाग के गर्व, इन्द्र के मान, ब्रह्मा के अभिमान, और गोपियों

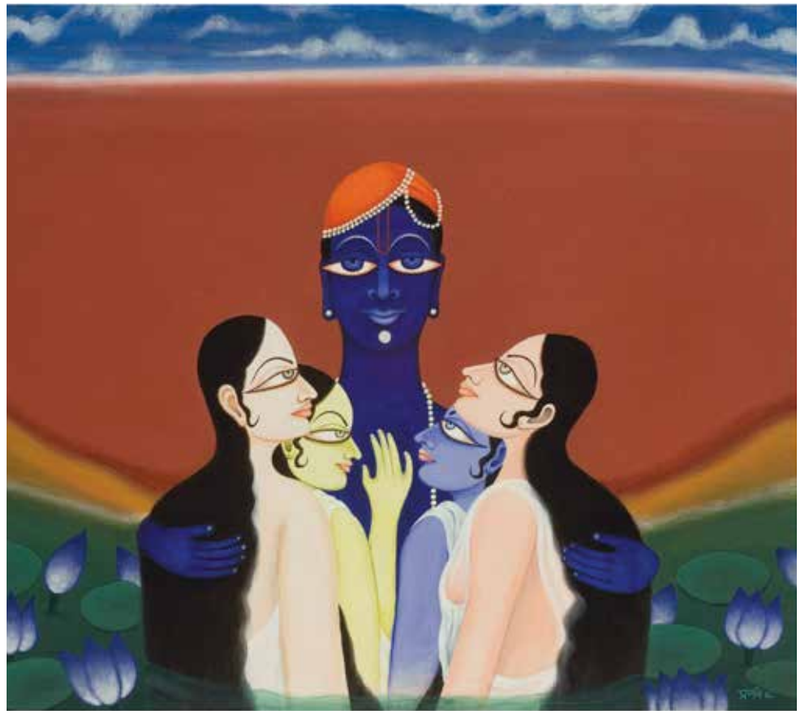

के मटकों से लेकर उनके मन तक तोड़ दिए तथा इतने निर्मम हुए कि स्वयं के ईश्वरत्व को तोड़कर एक बहेलिये के वेध्य हो गए। कृष्ण के चरित्र की यही विरोधी विशेषताएँ ईश्वर के गुणों के मनुष्य में साकार हो जाने का संदेश है। इसीलिए कृष्ण सच्चे मनुष्य हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में कृष्ण को आज के संदर्भो में यदि याद किया जाए तो लगता है कि कृष्ण की सच्ची मनुष्यता के गुण कहीं खो गए और उनके ईश्वरत्व से जुड़ी लीलाओं और कथाओं में हम विभोर होने लगे। कृष्ण की कर्मण्यता अंगीकार नहीं की जा सकी। आश्चर्य होता है कि कृष्ण का नाम सुनते ही कोई कैसे अपने परिवेश से कटकर निस्संग हो सकता है, तल्लीन और विभोर हो सकता है। कृष्ण इतिहास पुरुष तो हैं ही लेकिन वे भावपुरुष भी हैं। लेकिन ऐसे भावपुरुष वे हैं ही नहीं जो अपने आपको संसार से काटकर केवल अपनी वैयक्तिकता में सिमट जाएं।

कृष्ण सीमित नहीं समग्र हैं। कृष्ण ने कर्म करते हुए उसे निरंतर करते रहने का उपदेश किया लेकिन हम उनके 'कर्म' को 'जप' मान बैठे। हमने कृष्ण के नामों की व्यंजना को समझा लेकिन उसे आचरण में नहीं उतार पाए।

आज कृष्ण इन्हीं व्यंजनाओं के बीच बंदी हैं। ये व्यंजना बंधन बन गई हैं; विवशता हो गई हैं और ऐसी आस्था के कलशों में परिवर्तित हो गई हैं, जिन्हें कोई तोड़ना नहीं चाहता। लेकिन ऐसे रिक्त और अधपकी मिट्टी से बने केवल ऊपरी रंग-रोगन वाले कलश टूटने चाहिए। इन कलशों के मोह में फँसने के बजाए कृष्ण की कर्मण्यता से प्रेरित एक पक्की मिट्टी की ईंट यदि धरती पर रख दी जाए तो फिर इस ईंट के वक्ष पर धीरे-धीरे एक भव्य शिल्प अंगडाई लेने लगेगा। यह ईंट कब रखी जाएगी आज का यही सबसे प्रासंगिक प्रश्न है।

भागवत को कृष्ण का साक्षात् विग्रह कहा जाता है। वह इसलिए कि उसमें कृष्ण अपने पूरे वैराट्य और व्यंजना के साथ मौजूद हैं। वे लीला करते हैं और फिर यह लीला कथा बन जाती है, उनका साक्षात् दर्शन बन जाती है, संदेश बन जाती है, कर्मण्यता का। लेकिन हम कथा तक सीमित हो जाते हैं, कर्मण्यता से परे हो जाते हैं और यहीं ऐसा लगता है जैसे हमारे अन्दर विराजे हुए कृष्णत्व ने अपनी जीवन्तता खो दी हो। कृष्ण की सबसे बड़ी विशेषताओं में एक विशेषता यह है कि उन्हें हम स्वयं में अनुभव कर सकते हैं। यह अनुभव तभी होगा जब उनका कर्म प्रेरणा बनेगा। यह प्रेरणा बनती नहीं और हम इस अनुभव से वंचित रह जाते हैं।

'कृष्ण' का एक और अर्थ है जो 'कृष्' से जुड़ा हुआ है– वह है जोतना, खींचना। वे स्थिति और गति दोनों को खींचते हैं। इसीलिए उनके कृतित्व में हलचल है, रागात्मकता है।

वे सोलह कलाओं वाले पूर्ण पुरुष हैं। कान्हा हैं जिसका आशय है, 'कहाँ नहीं है जो'।

कृष्ण का कलामय स्वरूप इसी 'कान्हा' की व्यंजना है। चोल और हेलीविद के कांस्य शिल्पों से लेकर मथुरा और द्वारिका के उत्खनन हैं। जिनकी मूर्तियाँ तथा पुरातात्विक अवशेष व घोसुंडी के शिलालेख से लेकर हेलियोदोरस के स्तम्भ और ईसा पूर्व के वासुदेव को सम्बोधित सिक्कों और राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, मालवा, गंगा तथा आसाम से लेकर समूचे भारत के विभिन्न अंचलों में जन्मीं लघुचित्र शैलियों में बनाए गए लघुचित्रों से लेकर आज के समय के अप्रतिम कलाकार कन्हाई के चित्रों तक में कृष्ण की यह व्यंजना बिखरी है।

'छान्दोग्योपनिषद्' तथा पतंजलि के 'महाभाष्य' से लेकर 'भागवत पुराण', 'अग्नि पुराण', 'हरिवंश और 'विष्णु पुराण' तक

> कृष्ण की सबसे बड़ी विशेषताओं में एक विशेषता यह है कि उन्हें हम स्वयं में अनुभव कर सकते हैं। यह अनुभव तभी होगा जब उनका कर्म प्रेरणा बनेगा। यह प्रेरणा बनती नहीं और हम इस अनुभव से वंचित रह जाते हैं।

तथा जयदेव के 'गीतगोविन्द' से लेकर धर्मवीर भारती की 'कनुप्रिया' तथा मनु शर्मा की 'कृष्ण की आत्मकथा' तक जाने कितने काव्य और गद्य में उन्हें गाया और शब्दबद्ध किया गया है।

वे ऐसे अकेले ऐतिहासिक चरित्र हैं, जो उत्तर भारत में कृष्ण, महाराष्ट्र में विठोबा या विट्ठल, ओडिशा में जगन्नाथ, राजस्थान में श्रीनाथजी और सुदूर केरल में गुरु वायुरप्पन के स्वरूपों में विराजते हैं।

कला के विभिन्न अनुशासनों में कृष्ण के अनंत रूप हैं। अपने नामों के अनुरूप उनके कृत्य हैं, माधव, दामोदर, केशव, मोहन और ऐसे जाने कितने। यह तो एक छोटी-सी झाँकी है उनके विभिन्न स्वरूपों की।

कृष्ण इस देश के कण-कण में हैं। हमारी संस्कृति के धरातल का ऐसा कोई कोना नहीं जिस पर कृष्णत्व की छाप न हो। कृष्ण की सबसे बड़ी देन जो उन्होंने इस देश को दी वह है कुंज संस्कृति,– अभिजात्य, कृत्रिमता और आडम्बर से पूरी तरह मुक्त संस्कृति, जो इस देश का मूल स्वभाव है। यह संस्कृति, हरियाली, यमुना के दुकूल, गोधूलि वेला की गोरज, कदम्ब के फूलों की पीली आभा, राधा के निश्छल नेह, सुदामा की निर्धनता पर न्यौछावर होने वाली समृद्धि, दही तथा दूध की धवलता तथा वंशी के रंध्रों से निकलने वाली माधुरी से रची-पगी है।

यह संस्कृति हरी-भरी, अनुरागमय, प्रीतिमय और रागात्मक ऐक्य से परिपूर्ण है।

कृष्ण की जीवन यात्रा हमारे जीवन के पड़ावों की परिभाषा है, गोकुल का बचपन, मथुरा का यौवन, द्वारिका का वार्धक्य और प्रभास का महाप्रयाण।

|| नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

(एम. ए., इतिहास)
भारतीय कला और चित्रांकन परम्परा पर मौलिक़ अनुसंधान,
15 ललित निबंध संग्रह,
21 कला केंद्रित ग्रंथ,
6 सम्पादित ग्रन्थ,
'ब्रिटिश काउन्सिल के चार्ल्स इंडिया वालेस ट्रस्ट' सहित 'धर्मपाल शोधपीठ की फ़ेलोशिप'

कृष्ण का जन्म भादों की उस अँधियारी रात में हुआ था जब मेघ अपने पूरे पौरुष को जग को जतलाने के लिए भरपूर बरस रहा था; यमुना में सागर की सुनामी का उफान था। तब उस अँधेरे की, बरसती मेघों की चुनौती स्वीकार कर एक उजास पुरुष अंधकार की कोख से जन्म गया था। मथुरा के कारागार के कपाट फिर बंद हो गए थे, लेकिन नन्द के आँगन में दुंदुभियाँ बज उठी थीं।

यह एक कभी न धूमिल होने वाला उजाला था, जिसे हम 'कृष्ण' कहते हैं।जो जन-जन और कण-कण में बसा है।

ऋतंभरा

यदि उत्तर दिशा में जाना है तो दक्षिण
की ओर कदम बढ़ा कर वहाँ नहीं पहुँच सकते।
सही दिशा और गति ही लक्ष्य की ओर
पहुँचा सकते हैं।

आत्मा और परमात्मा ही सनातन हैं

जित देखूँ तित कृष्ण

हम सबका असली चश्मा दर-असल रंगीन होता है। जिस रंग का चश्मा पहन कर हम देखेंगे, संसार उसी रंग का दिखाई देगा। यह हमारी सांसारिक सीमा है। जैसे हम हैं, श्रीकृष्ण भी हमें वैसे दिखेंगे। यही कारण है कि श्रीकृष्ण को किसी मन्दिर में बच्चा समझकर देर तक सोने दिया जाता है, तो कहीं उन्हें बिठोवा के रूप में भक्त की प्रतीक्षा में ईंट पर खड़ा कर दिया जाता है। कारण एक ही है और वह है, श्रीकृष्ण की व्यापकता।

शास्त्रों में एक कथा आती है कि एक बार कुछ चक्षुहीन लोगों को एक हाथी के पास ले जाया गया। उनको हाथी के अलग-अलग अंगों का स्पर्श करवाकर पूछा गया कि बताओ हाथी कैसा होता है? जिसने हाथी की पूँछ पकड़ी, उसके लिए हाथी रस्सी के जैसा था, जिसने कान पकड़े उसके लिए सूप के जैसा था और जिसने पैर पकड़े उसके लिए हाथी खम्भे जैसा था।

कथा में आगे कहते हैं कि इसी प्रकार ब्रह्म है, जिसने उसको जितना देखा, वैसा जाना। पूर्णावतार कृष्ण का चरित्र भी ऐसा ही है, एक ही व्यक्तित्त्व में कई कई रूप, मानो कि वह एक दर्पण हो, जो उसके आगे आएगा, उसको अलग छवि दिखाई देगी। श्रीकृष्ण का स्वरूप ऐसा ही है. 'जाकी रही भावना जैसी तिन देखी प्रभु मूरत तैसी' का साक्षात् निरूपण कृष्ण-चरित में दिखाई देता है।

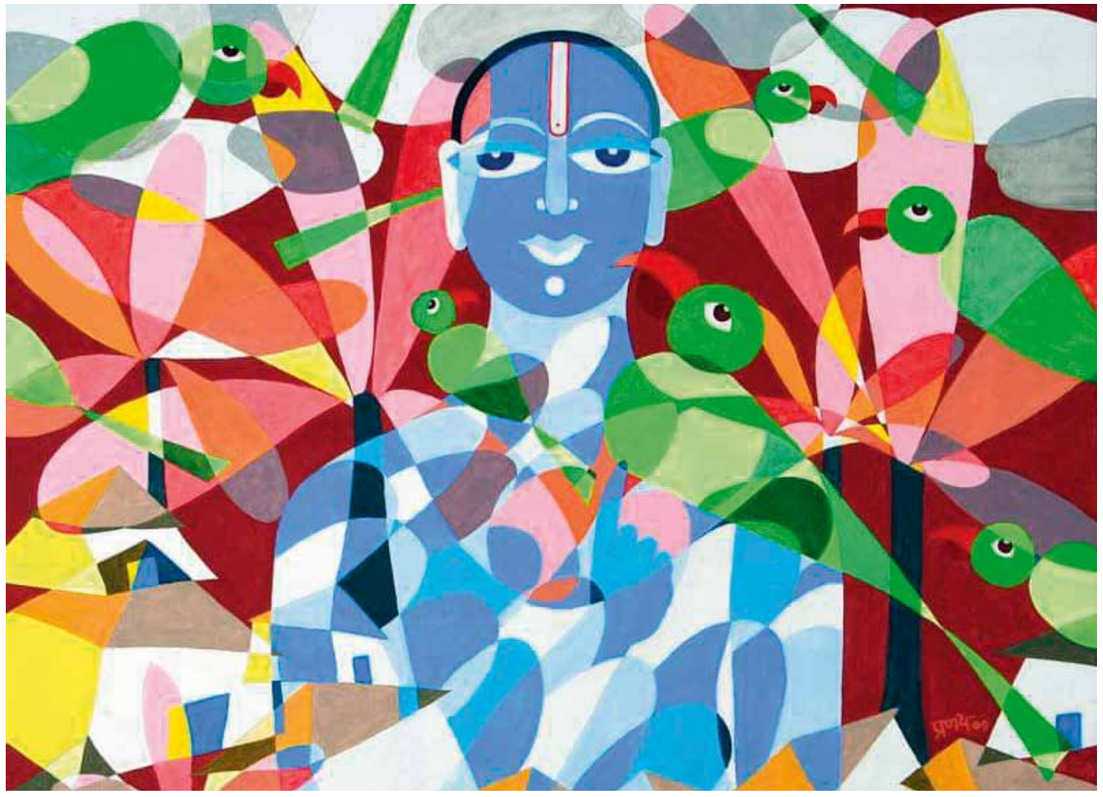

> कृष्ण भारतीय दर्शन और अध्यात्म का एक ऐसा ठिकाना है, जहाँ से हर व्यक्ति अपनी क्षमता और श्रद्धा के अनुसार ग्रहण कर के स्वयं को तृप्त कर सकता है। कृष्ण पर बहुत कुछ लिखा गया है, उनके जीवन और दर्शन पर अगणित पृष्ठ भरे जा चुके हैं, फिर भी लोगों को लगता है कि उनके ग्वाले कृष्ण पर तो कुछ कहने से छूट ही गया।

एक ओर श्रीकृष्ण द्वारकाधीश हैं, साम्राज्य के स्वामी, चतुर कूटनीतिज्ञ, अपूर्व योद्धा जिनकी बसाई द्वारका आज हजारों वर्षों बाद भी समुद्र के अन्दर अपनी भव्यता की कहानी कह रही है। दूसरी तरफ गीता का उपदेश देते हुए, कुरुक्षेत्र के विशाल मंदिर में विराज रहे 'रथाग्रपाणि' (अर्जुन के रथ के अग्रभाग को अपने हाथों में थामनेवाले) हैं। फिर, जगन्नाथजी की युवावस्था की कहानियाँ और उनके अनुरूप वैभवशाली जगन्नाथ धाम है। महाराष्ट्र में वही कृष्ण भक्तवत्सल सरलता की प्रतिमूर्ति बनकर विठोबा के रूप में खड़े हो जाते हैं। केरल में गुरुवायूर और मणिपुर के मयूरपिच्छधारी कृष्ण रूपों का सार तो वहीं के भक्त बता पाते हैं। फिर ब्रजमंडल है, जहाँ यशोदा के लाल, गोप-गोपिओं के परम सखा नटखट कृष्ण पूजे जाते हैं, जो खेल-खेल में कालिय मर्दन और गोवर्धन धारण करके अपने सर्वशक्तिमान् रूप की झलक दिखा कर पुनः अपनी माया से सबको ऐसा भ्रमित करते हैं कि वहाँ लोग राधे के कृष्ण के अलावा किसी को जानना ही नहीं चाहते हैं। भक्त की प्रतीक्षा में ईंट पर खड़े हुए बिठोबा, भक्त का कर्ज़ चुकानेवाले साँवरिया सेठ जैसे न जाने कितने प्रसंग कृष्ण भक्तों के हृदय में छुपे हुए हैं, जिनके बारे में दुनिया जानती ही नहीं।

वहीं नाथद्वारा में किले जैसे विशाल मंदिर में निवास करनेवाले श्रीनाथजी कि महिमा की कहानियाँ किसे नहीं पता हैं? कहते हैं कि औरंगजेब जैसा शक्तिशाली और दुर्दांत लुटेरा भी उनके मंदिर तक नहीं पहुँच सका और उनके प्रताप से आतंकित हो कर दुर्लभ हीरा भेंट में चढ़ाकर लौट गया। ऐसे पराक्रमी कृष्ण, भक्तों की भावना की आगे ऐसे बेबस हो जाते हैं कि जब तक उनके भक्त न कह दें कि यह बाल कृष्ण के उठने लायक समय हो गया, वो सोकर ही नहीं उठते। नाथद्वारा में कृष्णजी बाल रूप में ही विराजते हैं। सुबह के पहले दर्शन बिना स्नान किए रात के कपड़ों में ही देते हैं। भक्त कहते हैं कि बालक हैं, सुबह सुबह जल्दी उठकर कैसे तैयार होंगे? घर-घर लाखों भक्तों द्वारा प्यार से सेवा करवानेवाला बाल गोपाल (लड्डू गोपाल) भी तो वही है। जी हाँ, बाल गोपाल के भक्त प्यार से उनकी पूजा को पूजा नहीं सेवा कहते हैं। कैसी भी विपदा, कैसा भी सूतक हो, बाल गोपाल की पूजा अर्चना, भोग प्रसाद में व्यतिक्रम नहीं होता, क्योंकि वो तो छोटा-सा, अबोध, असहाय शिशु रूप में है, जिसकी सेवा तो होती ही रहनी चाहिए। कुछ भी हो जाए, छोटे बालक को खिलाना, नहलाना, झूला झुला-झुलाकर सुलाना तो नहीं रुक सकता है। सुदर्शन चक्र और बंसी धारण करनेवाले योगेश्वर कृष्ण की बाल गोपाल रूप में घुटनों के बल बैठे, हाथों में माखन का गोला लिए चेहरा उठा कर देखते हुए छवि कितनों को मोक्ष दिला देती है। इस रूप में भक्त और भगवान् में लेन-देन नहीं होता, शुद्ध प्रेम और वात्सल्य का भाव देखने को मिलता है। यहाँ तक कि लोग अगर मानते हैं कि उनके बिना उनके बाल गोपाल दुखी हो जाएँगे तो वो उनको पूरे ताम-झाम के साथ हर जगह अपने साथ ही ले जाते हैं।

कृष्ण भारतीय दर्शन और अध्यात्म का एक ऐसा ठिकाना है, जहाँ से हर व्यक्ति अपनी क्षमता और श्रद्धा के अनुसार ग्रहण कर के स्वयं को तृप्त कर सकता है। कृष्ण पर बहुत कुछ लिखा गया है, उनके जीवन और दर्शन पर अगणित पृष्ठ भरे जा चुके हैं, फिर

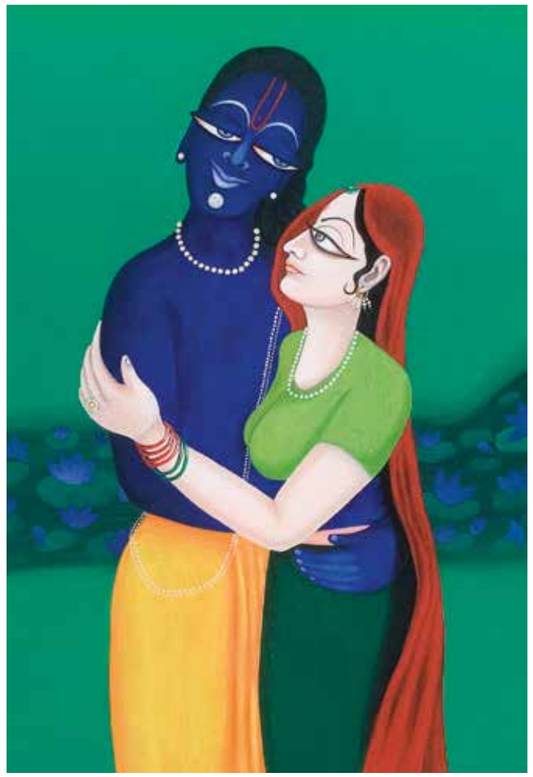

> कृष्ण की तो बात ही निराली रही, जन्म के साथ ही उन्होंने जो आततायिओं का संहार करना शुरू किया तो पूतना और वृकासुर, कालियनाग से होते-होते यह क्रम जरासंध, कंस, बाणासुर, पौण्ड्रक, लवणासुर से होते हुए कुरुक्षेत्र के मैदान तक भी समाप्त नहीं होता।

॥ डॉ. चित्रा अवस्थी

स्नातकोत्तर, कानपुर विश्वविद्यालय, स्वर्णपदक से सम्मानित, समाजशास्त्र, दर्शन और शिक्षा विषय पर पुस्तकों का लेखन, अध्यक्ष, ऋत फाउंडेशन, शिक्षा एवं शरणार्थियों के पुनर्वास के लिए लेखन, संगोष्ठी तथा अन्य क्रियाकलापों के द्वारा प्रयासरत।

भी लोगों को लगता है कि उनके ग्वाले कृष्ण पर तो कुछ कहने से छूट ही गया, और फिर कोई लेखक, कोई वक्ता, कोई कवि कृष्ण पर कुछ कहने लगता है। श्रीमद्भागवत महापुराण, महाभारत, हरिवंश पुराण आदि में सबसे पहले कृष्ण के विषय में वर्णन मिलता है, लेकिन इसके पहले के पुराण मिलते भी नहीं हैं, इसलिए इसके आधार पर कृष्ण की प्राचीनता का निर्धारण नहीं किया जा सकता है। कृष्णावतार कुछ अर्थों में अन्य अवतारों से हट कर है।

अक्सर परमशक्ति किसी विशेष कार्य के लिए, किसी आततायी के विनाश के लिए, मानवता को किसी आसन्न संकट से उबारने के लिए, पृथ्वी पर अवतरित होती है किंतु कृष्ण की तो बात ही निराली रही, जन्म के साथ ही उन्होंने जो आततायिओं का संहार करना शुरू किया तो पूतना और वृकासुर, कालियनाग से होते-होते यह क्रम जरासंध, कंस, बाणासुर, पौण्ड्रक, लवणासुर से होते हुए कुरुक्षेत्र के मैदान तक भी समाप्त नहीं होता।

वे स्वयं बार-बार कहते हैं कि मैं धर्म की स्थापना के लिए आया हूँ, न कि किसी व्यक्ति विशेष का नाश करने के लिए। धर्म की स्थापना में बाधा बननेवाला हर तत्त्व मेरा शत्रु है। स्वयं कृष्ण के मुँह से निकली भगवद्गीता भी एक ही उदाहरण है, जिसमें उन्होंने स्वयं स्पष्ट शब्दों में अपने ईश्वर होने का उद्घोष किया है, कोई इधर-उधर से आया सन्देश नहीं, सीधा ईश्वर के द्वारा कहा गया ज्ञान। यही वजह है कि आज तक अनेक भाष्य होने के बाद भी जब कोई बौद्धिक गीता को पढ़ता है, तो उसको लगता है कि अरे! गीता का यह संदेश तो आज तक कोई समझ ही नहीं सका था। प्रस्थानत्रयी की टीका आध्यात्मिक-धार्मिक जगत् में प्रतिष्ठित होने के लिए आवश्यक मानी जाती है। गीता की महिमा कहने के लिए यह एक छोटा आलेख तो क्या एक पूरा ग्रन्थ भी कम है।

कृष्ण भक्ति के अनेक सम्प्रदाय हैं, जिनके स्वयं के दुरूह दर्शन हैं। इनमें से वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, अंडाळ, वेदांत देशिक आदि की प्रशस्त परंपराएँ हैं, जिनमें कृष्ण-भक्ति और उसके दर्शन फले-फूले हैं। अद्वैत, शुद्धाद्वैत, विशिष्टाद्वैत, भेदाभेद के दर्शन कृष्ण भक्तों के ही विकसित किए हुए हैं। दशमेश गुरु गोबिंद सिंहजी ने 'चौबीस अवतार' में कृष्ण के विषय में लिखा है। सिख सम्प्रदाय से ही निकले उन्नीसवी सदी के आन्दोलन राधास्वामी का नाम ही बहुत कुछ कह देता है।

कृष्ण की महिमा ऐसी व्यापक है कि भारतीय उपमहाद्वीप में फलने-फूलने वाली धार्मिक परंपराओं को कृष्ण को मानना ही पड़ा, भले ही वे उनको अपने धर्म के अन्दर शामिल करके उसके भाग के रूप में मानें। जैनों को अपने धर्म की मान्यता स्थापित करने के लिए कृष्ण के जीवन को अपने ग्रंथों में शामिल करके जैनियों के हाथ उनकी पराजय की कथाएँ रचनी पड़ीं। यही स्थिति बौद्धों की भी रही, कृष्ण को बौद्ध धर्म के अंदर लाने के लिए जातक कथाएँ लिखी गईं, जिनके आधार पर कृष्ण भक्तों को बुद्ध की महिमा से आकर्षित करने के प्रयास किए गए। जनमानस में स्थान बनाने के लिए कृष्ण के व्यक्तित्त्व से बड़ी कोई लकीर रच सकने में असमर्थ होकर कृष्णरूपी लकीर को छोटा करने की उनकी यह कोशिश कितनी सफल हुई, यह छुपा नहीं है। अहमदिया, बहाई भी कृष्ण को अपने तरीके से मान्यता देते हैं।

कुछ ईसाई और ओकाल्ट संप्रदाय भी कृष्ण को अपनी परंपरा का भाग बताते हैं। (ईसाई धर्म के प्रचार के लिए आदिवासी क्षेत्रों में वितरित किए गए पर्चों में कृष्ण के गौ पालक परिवार से होने तथा ईसा मसीह गड़रिया परिवार से होने का उल्लेख कर दोनों को एक बताते हुए ईसाई धर्म अपनाने के लिए प्रेरित किया गया था।– सं.) कारण सब जगह एक ही है, कृष्ण की महिमा से जीत न सको तो उनको ही अपना लो, उनकी महिमा का लाभ उठाने के लिए।

○ ○ ○

ईश्वरीय क्रान्तिकारी कृष्णकृपामूर्ति

ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य :

'अन्तरराष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ'

(इस्कान)

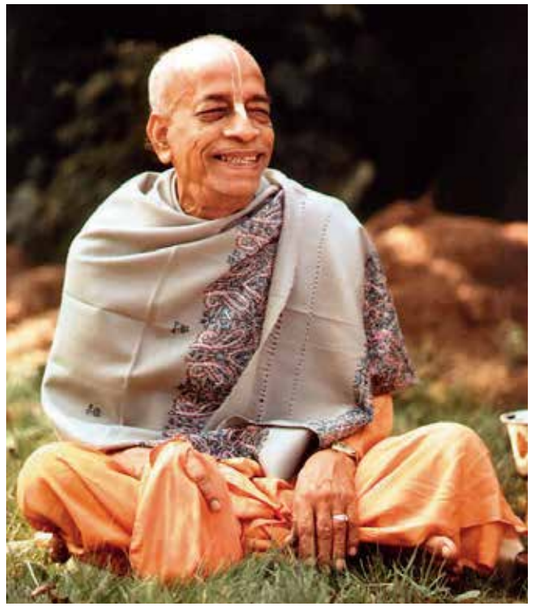

कृष्णकृपामूर्ति ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का जन्म अभय चरण डे के रूप में 01 सितम्बर 1896 को कलकत्ता, भारत में हुआ। उनका लालन-पालन उच्च आध्यात्मिक मूल्यों से परिपूर्ण परिवार में हुआ। वे अपने निजी राधाकृष्ण विग्रह की अर्चना किया करते थे और बचपन में ही अपने मित्रों के साथ जगन्नाथ महोत्सव का आयोजन भी किया करते थे। उस समय किसी को ज्ञात नहीं था कि आगे चलकर यह बालक सम्पूर्ण विश्व में विग्रह अर्चना की सेवा तथा रथयात्रा के असाधारण मानकों की स्थापना करेगा।

अभय चरण डे ने अपनी उच्च शिक्षा कलकत्ता के प्रतिष्ठित स्कॉटिश चर्च कॉलेज से प्राप्त की और गाँधीजी के 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन' में भाग लेने चले गए। कुछ वर्षों पश्चात् उनकी भाग्यशाली भेंट अपने आध्यात्मिक गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर से हुई जिससे उनकी राह जीवन के उच्च आध्यात्मिक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बदल गई।

उनके गुरु ने चैतन्य महाप्रभु के संदेश को अंग्रेजी भाषी पश्चिमी देशों में पहुँचाने का आदेश किया।

श्री चैतन्य महाप्रभु इस धरा पर लगभग 500 वर्ष पूर्व कलि के युगधर्म हरिनाम संकीर्तन आन्दोलन को प्रचारित करने के लिए अवतरित हुए थे। उन्होंने घोषणा की कि भगवान् के पवित्र नाम का संकीर्तन विश्व के प्रत्येक शहर तथा गाँव में फैलेगा। श्रील प्रभुपाद ने इस भविष्यवाणी को सम्पूर्ण विश्व में प्रचारित कर पूर्ण किया।

सन् 1944 में स्वामी प्रभुपाद जी ने 'बैक टू गॉडहैड' नाम से अंग्रेजी में पाक्षिक पत्रिका प्रारम्भ की। उन्होंने अकेले ही हस्त-लिखित लेखों का टंकण किया, प्रूफ रीडिंग (टंकण की गलतियों को ठीक करना) की जाँच की और एक-एक पत्रिका स्वयं वितरित की। इस पत्रिका को उनके शिष्यों द्वारा आगे जारी रखा जा रहा है।

अपने व्यावसायिक एवं पारिवारिक उत्तरदायित्वों से मुक्त होकर वे वर्ष 1954 में श्रीधाम वृंदावन (भारत) में बस गये और भविष्य की पश्चिम यात्रा हेतु कई वर्षों तक विस्तृत तैयारी की। उन्होंने 'श्रीमद्भगवद्गीता' एवं 'श्रीमद्भागवतम्' के संस्कृत श्लोकों का अनुवाद

वे बूढ़े, एकाकी एवं व्यावहारिक रूप से बिना पैसों के ठंडे बाहरी देश में थे। इस पर भी उन्होंने अपनी मंशा के अनुसार बाउरी की छत से ही सम्पूर्ण न्यूयार्क की कुख्यात स्किवरड़ो से भगवद्गीता की कक्षाएँ लेना तथा टॉम्पकिन स्क्वायर पार्क में कीर्तन करना प्रारम्भ कर दिया। वे अमेरिका ऐसे समय पहुँचे जब वह देश समाज सुधार के लिए उत्सुक था। इनके संदेश बहुत से लोगों के साथ अमेरिकी कवि एलन गिन्सबर्ग को भी गुंजायमान करने लगे और उनमें से बहुतेरे उनके शिष्य बन गए।

करना प्रारम्भ किया और उनके ऊपर विस्तृत व्याख्याएँ लिखीं। उनके विद्वत्तापूर्ण एवम् अत्यधिक योगदान के लिए गौड़ीय वैष्णव समिति ने उनको 'भक्तिवेदान्त' उपाधि से सम्मानित किया।

वर्ष 1965 में 69 वर्ष की आयु में अपने आध्यात्मिक गुरु के निर्देशों को पूर्ण करने हेतु अमेरिका की ऐतिहासिक यात्रा के लिए प्रस्थान किया। जहाज में दिल का दौरा पड़ने के पश्चात् भी वे दृढ़ एवम् अडिग रहे। पैंतीस दिनों की यात्रा के पश्चात् वे सात डालर के भारतीय रुपयों के बराबर मुद्रा एवम् एक टोकरा अपने द्वारा अनुवाद किये गए पावन ग्रन्थों के साथ साथ ब्रुकलिन पहुँचे।

वे बूढ़े, एकाकी एवं व्यावहारिक रूप से बिना पैसों के ठंडे बाहरी देश में थे। इस पर भी उन्होंने अपनी मंशा के अनुसार बाउरी की छत से ही सम्पूर्ण न्यूयार्क की कुख्यात स्किवरड़ो से भगवद्गीता की कक्षाएँ लेना तथा टॉम्पकिन स्क्वायर पार्क में कीर्तन करना प्रारम्भ कर दिया। वे अमेरिका ऐसे समय पहुँचे जब वह देश समाज सुधार के लिए उत्सुक था। इनके संदेश बहुत से लोगों के साथ अमेरिकी कवि एलन गिन्सबर्ग को भी गुंजायमान करने लगे और उनमें से बहुतेरे उनके शिष्य बन गये। इन शिष्यों की सहायता से उन्होंने न्यूयार्क के लोअर इस्ट साइड में एक दुकान किराये पर ले ली जिसका नाम था- 'मैचलेस गिफ्ट शॉप।' जुलाई 1966 में बहुत सारी बाधाओं और कठिनाइयों को पार करते हुए उन्होंने अन्तरराष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ (इस्कॉन) की स्थापना की।

इसके बाद 1967 में सान फ्रांसिस्को के एराबरी जिले में गए, जहाँ उभरते हिप्पी समुदाय को कृष्णभावनामृत ने आँधी की भाँति अपने प्रभाव में ले लिया। यह शहर पश्चिम में रथयात्रा के आयोजक तथा प्रत्यक्षदर्शी के रूप में भी उभरा।

आगामी वर्षों में श्रील प्रभुपाद जी के समर्पित शिष्य 'हरे कृष्ण मूवमेंट (आन्दोलन)' को यूरोप ले गये, जहाँ इसने लोगों को बहुत गहरे से प्रभावित किया, जिनमें सुप्रसिद्ध व लोकप्रिय अंग्रेज़ी रॉक बैंड 'द बीटल्स' के गायक जार्ज हैरिसन भी थे। जॉर्ज हैरिसन ने श्रील प्रभुपादजी की पुस्तक 'कृष्ण द सुप्रीम परसनैलिटी ऑफ गॉडहैड' के प्रकाशन में सहायता की। इसके साथ-साथ उसने भक्ति वेदान्त मन्दिर, जो आज भी इंग्लैड के विख्यात मंदिर के रूप में प्रसिद्ध है, की स्थापना हेतु अपनी सम्पत्ति दान में दी।

भारत में घातक रूप से उदित हो रहे नैतिक व सांस्कृतिक विनाश ने श्रील प्रभुपाद को अपने गृहराष्ट्र भारत में वापस आने के लिए विवश कर दिया। अपने पाश्चात्त्य शिष्यों के साथ उन्होंने व्यापक रूप में वैदिक परम्परा के पुनरुत्थान को प्रज्वलित किया। अनेक महत्त्वपूर्ण इस्कान मंदिरों की स्थापना मुंबई, वृन्दावन, मायापुर इत्यादि में की।

श्रील प्रभुपाद जी ने अपने प्रिय, हृदयविदीर्ण शिष्यों की संगति में इस भौतिक संसार से 14 नवम्बर 1977 को देवलोक के लिए प्रस्थान किया। ग्यारह वर्ष के छोटे से कालखण्ड में उन्होंने पृथ्वी भूमंडल का चौदह बार भ्रमण किया, सौ से अधिक मन्दिर, महत्वपूर्ण केन्द्र, गुरुकुल, कृषक समुदाय की स्थापना अन्य अनेक उपक्रमों के साथ की। उनकी इच्छा 'इस्कॉन मंदिर' की दस कि.मी. की परिधि में कोई भूखा नहीं होना चाहिए; 'जीवन हेतु अन्न' जो कि आज विश्व में सबसे व्यापक खाद्य सहायता कार्यक्रम के रूप में फलीभूत हो चुकी है। जबकि श्रील प्रभुपाद जी का मानव जाति के प्रति योगदान अनमोल है, जिसकी तुलना नहीं की जा सकती है। निःसंदेह उनका सर्वाधिक असाधारण मूल्यवान् योगदान उनका साहित्य है, जो अतुलनीय है। उनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तकों में 'श्रीमद्भगवद्गीता-यथार्थरूप', 'श्रीमद्भागवतम्' (30 खण्डों में), 'श्रीचैतन्य-चरितामृत' (17 खंड) सम्मिलित है। उनके प्रामाणिक अनुवाद समग्र तात्त्विक गहराई एवं स्पष्टता के साथ विस्तृत तात्पर्य को व्यापक रूप से प्रशंसित किया जाता है।

पारम्परिक शास्त्र कलयुग को प्रधानतया मिथ्याचार एवं विवाद के रूप में वर्णित करते हैं। आज लोगों की वास्तविक भावनामृत तथा बौद्धिकता को दृष्टिभ्रम एवं अज्ञानता ने ढक लिया है। उद्देश्यविहीनता, असम्बन्धता, ओछापन तथा किंकर्तव्यविमूढ़ता की भावनाएँ छाई हुई हैं। बार बार महामारियाँ, युद्ध, प्राकृतिक आपदाएँ और भौतिकवादी अस्थिर प्रकृति वाला संसार हमारे सम्मुख प्रस्तुत हैं और भले ही हम कितना भी नियन्त्रक बनना चाहें, वास्तव में हम नियन्त्रक नहीं हैं। इसीलिए स्वविनाश तथा उद्देश्यपूर्ण ध्वंसलीला के बढते समय में श्रील प्रभुपाद जैसे आचार्य ने भौतिकवादी संसार में असंख्य पीड़ित आत्माओं के उत्थान हेतु, ईश्वर के प्रति निष्काम प्रेम को जागृत करने हेतु, ईश्वर के साथ हमारे संवैधानिक सम्बन्धों को याद दिलाने हेतु तथा जीवन के गुम हो चुके उद्देश्य के पुनः अन्वेषण हेतु अवतरण लिया।

प्रभुपादजी के अपने आध्यात्मिक गुरु के निर्देशों के प्रति अटल श्रद्धा, उनमें सदैव विचरित होनेवाली करुणा, अकारण दयाभाव, अतुलनीय निःस्वार्थता, ईश्वरीय नाम में निहित महिमा से शिक्षित करने के अखण्डनीय विश्वास के एकमात्र कारण से प्रभुपादजी प्रत्येक चुनौती, विषमता, विघ्न तथा संघर्ष में विजयी बनकर उभरे।

प्रभुपादजी के अपने आध्यात्मिक गुरु के निर्देशों के प्रति अटल श्रद्धा, उनमें सदैव विचरित होने वाली करुणा, अकारण दयाभाव, अतुलनीय निःस्वार्थता, ईश्वरीय नाम में निहित महिमा से शिक्षित करने के अखण्डनीय विश्वास के एकमात्र कारण के कारण प्रभुपादजी प्रत्येक चुनौती, विषमता, विघ्न तथा संघर्ष में विजयी बनकर उभरे।

जाति, रंग, वंश, लिंग, आयु, वर्ग, पंथ, राष्ट्रीयता का बिना ध्यान रखते हुए मानव जाति के लिए सर्वाधिक सत्य परमानन्द देने वाला उपहार– कृष्ण प्रेम निःशुल्क बाँटा। उन्होंने हमें जीवन के शारीरिक तत्त्व से ऊपर उठने तक अपने आपको कृष्ण के शाश्वत अंग-प्रत्यंग के साथ पुनः पहचान बनाने की शिक्षा दी। जब एक बार इस ग्रह पर विचरण करने वाला प्रत्येक मानव इस ज्ञान को जान जाएगा, तभी इस संसार में वास्तविक एकता तथा शान्ति को प्राप्त किया जा सकेगा।

तथाकथित, स्वघोषित आधुनिक गुरुओं से श्रील प्रभुपादजी अलग इसलिए हैं, क्योंकि वे वही जीते थे, जो पढ़ाते थे। वे आए और उन्होंने किसी राज्य अथवा राष्ट्र को नहीं वरन् लाखों लोगों के दिलों को जीता। निःसंदेह, उनकी कालातीत वैधता (वसीयत) इस अन्धेरे समय में लोगों के जीवन को प्रकाशित करती रहेगी और उनकी विभूतियों को शाश्वत रूप से गाया जाता रहेगा, क्योंकि वे (श्रील प्रभुपादजी) 'सदैव आपका शुभ-चिन्तक' थे और हैं, जैसा कि वे सदैव अपने पत्र के नीचे 'सदैव आपका शुभ-चिन्तक' से हस्ताक्षर करते थे।

o o o

॥ सौजन्य से
चंद्रकांत विद्यार्थी

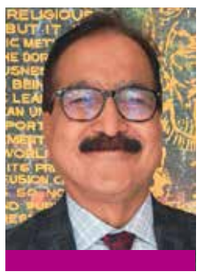

चंद्रकांत विद्यार्थी, पेशे से चार्टर्ड अकाउंटेंट, आर्थिक सलाहकार और हृदय से कृष्ण के अनन्य भक्त. कृष्णकृपामूर्ति ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद के अनुयायी। लेखन और कला में विशेष रुचि।

KRISHN PRAGYA

ADVERTISING RATES

Magazine Page per unit Colour (in ₹)	FP Next to Cover (Opening Page) (in ₹)	FP Colour (in ₹)	Inside Cover (in ₹)	Back Cover (in ₹)
Krishn Pragya (Hindi)	1,50,000/-	75,000/-	2,00,000/-	3,00,000/-
Krishn Pragya (English)	1,50,000/-	75,000/-	2,00,000/-	3,00,000/-
Krishn Pragya (Hindi + English)	2,40,000/-	1,20,000/-	3,20,000/-	4,80,000/-

NOTE:

1. Half Color Page Facility for advertisement in the inner pages is also available. Rate is ₹ 40,000/- per insertion in either Hindi or English Krishn Pragya. If anyone wants combined half page insertions in both languages Krishn Pragya, rate will be ₹ 65,000/-.
2. Onion Skin Paper special insertions of one page, one side 4 color printing rate - ₹ 1,00,000/- per issue, per insertion.
3. Provisions for sponsoring Gifts to readers on festivals e.g Bansuris, Mayur Pankh, Rosaries of Tulsi etc. *(Please contact us for the rates.)*

MAGAZINE'S SPECIFICATIONS

- Size : A-4 (210x297 mm)
- Pages : 104+4 (Covers)
- Cover : 250 GSM Art Paper, Laminated, 4 Colors Printing.
- Inner Pages : 110 GSM Matt Finish, 4 colors Printing.
- Binding : Perfect
- Envelope : Thick paper string wrap.

MECHANICAL DATA FOR ADVERTISMENT

Full Page Size Specifications:

Bleed Size : 220 (W) mm x 307 (H) mm
Trim Size : 210 (W) mm x 297 (H) mm *(please give cut marks on this size, as this is the finish size)*
Non Bleed Size : 190 (W) mm x 277 (H) mm
Format : PDF / EPS / TIFF
Colour Scheme : CMYK
Resolution : 300dpi

For more details call - **98202 27518 / 98202 27918** or visit **www.krishnpragya.com**

कृष्ण प्रज्ञा
आस्था ◦ विवेक ◦ वर्तमान

A-604, Sheraton Classic, Charat Singh Colony, Chakala, Andheri (East), Mumbai - 400 093. Maharashtra. India
Tel: 98202 27918. E-mail: pawanksethhi@gmail.com

स्थायी स्तम्भ

मेरे कृष्ण और मैं

मेरा संबंध उत्तर प्रदेश के रुहेलखंड क्षेत्र से है। रुहेलखंड क्षेत्र हिंदू-मुस्लिम संस्कृति अर्थात् साझा विरासत का केंद्र है। मेरी तहसील बहेड़ी जिला बरेली में एक बड़े परंपरागत मेले का आयोजन सैकड़ों वर्षों से होता चला आ रहा है। हिंदू और मुसलमान एक दूसरे के पर्व और त्यौहारों का सम्मान करते हैं।

अपनी बाल्यावस्था में मेले में हम रामलीला देखने जाते थे। आज भी जब दशहरे के दिन राम-बारात निकलती है तो सभी धर्मों के लोग राम-बारात के स्वागत के लिये अपनी छतों और सड़कों पर खड़े दिखाई देते हैं।

इसी प्रकार जन्माष्टमी के अवसर पर जब कृष्ण की झाँकी निकलती है, तो कृष्ण को देखने सभी धर्मों के लोग इकट्ठा होते हैं। बाल्यावस्था में सहसा एक प्रश्न मन में उठा कि यह कृष्ण कौन हैं? जिसे लोग भगवान्, कान्हा, गिरधर गोपाल आदि नामों से पुकारते

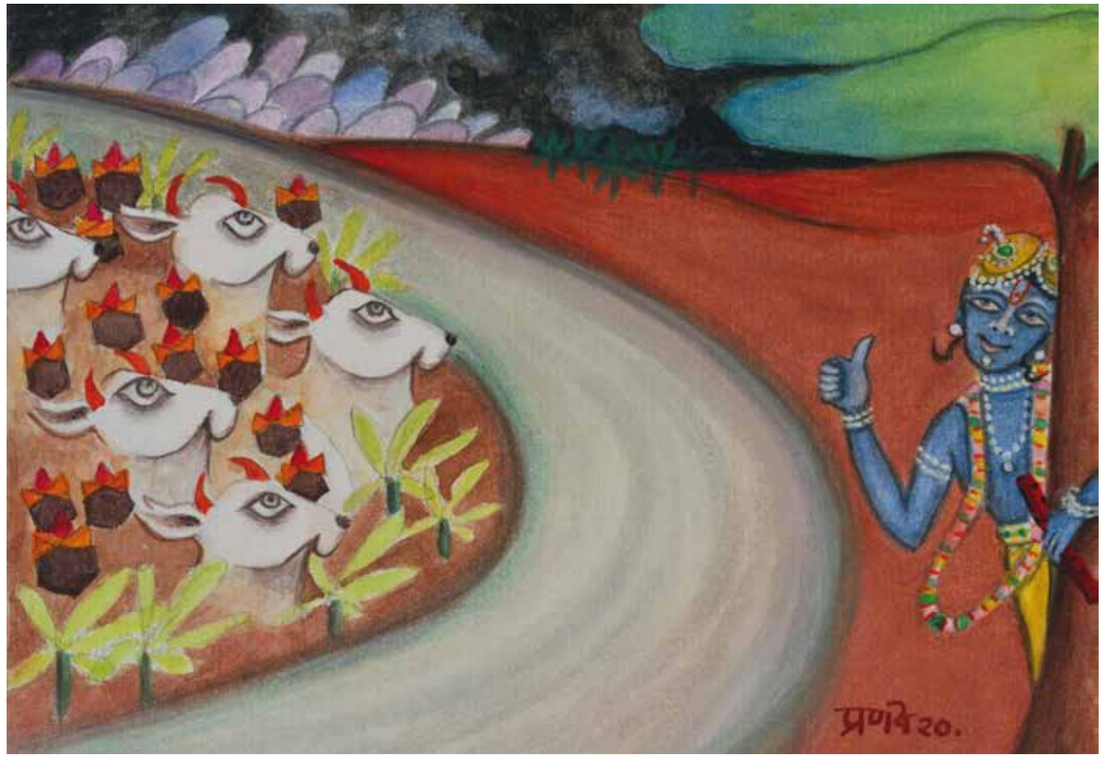

हैं। पूरी दुनिया में कृष्ण को अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। लेकिन मेरे मन में उनकी छवि, जिसमें मुरली अधरों पर है, मोर पंख वाला मुकुट सिर पर और एक पैर दूसरे पर, बसी हुई है। जन्माष्टमी अर्थात् कृष्ण का जन्म दिन, लेकिन मेरा मानना है कि जन्माष्टमी केवल व्रत या पूजा विधान नहीं, बल्कि जीवन पद्धति है। श्रीकृष्ण के जन्म के अनुभव ही जीवन की विषमता से बाहर निकलने का साहस देते हैं।

मैं "मैया मोरी मैं नहीं माखन खायो" और "यशोमती मैया से बोले नंदलाला" जैसे पदों को माँ से लोरी के रूप में सुनते हुए बड़ा हुआ हूँ। माँ सुलाने के लिये अक्सर यही गाया करती थी। बचपन में वह अक्सर मुझे 'मेरा कान्हा' कहकर संबोधित करती थी। तब मैं नहीं जानता था कि 'कान्हा' क्या है? माँ मुझे कान्हा क्यों कहती है। धीरे-धीरे माँ और भाई-बहनों से सुना और जाना कि वह कोई भगवान् है, उस समय भगवान् के विषय में भी समझ नहीं थी। धीरे-धीरे उम्र के साथ समझ बढ़ी और कृष्ण के बारे में जानकारी भी। दूरदर्शन सीरियल के माध्यम से उस समय कृष्ण के विभिन्न रूपों और कार्यों को देखा, मन उनकी ओर आकर्षित हुआ। शिक्षा प्राप्त करने के क्रम में उनके अद्भुत स्वरूप को जानने का अवसर मिला। रसखान के कृष्ण काव्य को पढ़कर तो जैसे मन आनंद लोक में डूबने लगा। "धूरि भरे अति शोभित श्याम जू

> आखिर कृष्ण में ऐसा क्या है कि न केवल हिन्दू, बल्कि मुस्लिम समुदाय एवं अन्य धर्मों के लोग भी उनका गुणगान कर रहे हैं।

तैसी बनी सिर सुंदर चोटी" पढ़ते-पढ़ते मन में बालकृष्ण की छवि अंकित हो गई।

उम्र और अनुभव धीरे-धीरे और बढ़े और उसी के साथ कृष्ण के साथ मेरा लगाव भी बढ़ता गया। अपने बड़ों, गुरुजनों और साथियों से कृष्ण के विषय में अनेक कथाएँ सुनी। उनके बारे में जितना सुना मन और अधिक जानने को उत्सुक हुआ। मन यह जानने को उत्सुक हुआ कि आखिर कृष्ण में ऐसा क्या है कि न केवल हिन्दू, बल्कि मुस्लिम समुदाय एवं अन्य धर्मों के लोग भी उनका गुणगान कर रहे हैं। धीरे-धीरे कृष्ण के प्रति मेरी जिज्ञासा बढ़ती गयी। स्नातक तक पहुँचते-पहुँचते हिंदी का विद्यार्थी होने के कारण लगातार उनके विषय में पढ़ने को मिला। कभी बिहारी, कभी घनानंद, कभी खुसरो तो कभी विद्यापति और मीरा के माध्यम से कृष्ण भक्ति परंपरा को पढ़ा। कृष्ण ज्ञान, प्रेम, उदारता, दया और क्षमा के सागर हैं। "मेरो तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई" बस यही वह भाव है जिसने मुझे भी श्रीकृष्ण से बाँध दिया।

जब समझ परिपक्व हुई तो नए सवाल उठे 'कृष्ण' क्या हैं ? क्योंकि स्नातक स्तर पर हिंदी मेरा प्रमुख विषय था और साथ ही प्रिय भी। हिंदी विषय में आगे अध्ययन करने में मुझे कृष्ण के और अधिक विशद रूप का ज्ञान हुआ। रसखान के काव्य में उनके प्रति जो प्रेम और भक्ति मैंने देखी है, वह उनका स्वयं का ही उनसे प्रेम है न कि किसी गोपी का। वृन्दावन के कण-कण में रमे हुए श्रीकृष्ण मेरे जीवन में रमने लगे और एक रहस्यमयी भक्ति और प्रेम ने मेरे मन में जन्म ले लिया। मीरा के काव्य में कृष्ण के प्रति माधुर्य भाव को पढ़ते-पढ़ते एक आध्यात्मिक चेतना ने मेरे अन्दर जन्म लिया। कृष्ण मेरे लिये आध्यात्म और भक्ति का केंद्र बन गए। उनके बारे में पढ़ना मेरे लिये किसी भक्ति से कम नहीं है। वही कर्म योग गीता उपदेश मेरे जीवन का आधार बन गया।

रसखान, रहीम, खुसरो घनानंद के काव्य को पढ़ते पढ़ते कभी लगा कि मैं ही रसखान हूँ, मैं ही सूर, रसलीन और खुसरो हूँ जो अपने काव्य के माध्यम से कृष्णभक्ति में सराबोर हैं। मैं ही वह अर्जुन हूँ जो करबद्ध होकर उनके मुखारविंद से गीता अमृत का पान कर रहा है। परमानंद स्वरूप मेरे जीवन का अभिन्न अंग बन गए हैं। जब कोई जीवन का अभिन्न अंग बन जाता है तो उसके विषय में प्रत्येक बात जानने को मन लालायित रहता है और अधिक जानने के लिये मैंने उनसे संबंधित विभिन्न पुस्तकों, साहित्यकारों, कवियों का अध्ययन किया। सूर साहित्य में उनका बाल रूप, तुलसी की कृष्ण गीतावली में उनका भक्तवत्सल रूप, गीता में उनके कर्मयोगी रूप को देखकर मन आनंदित हुआ।

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युथानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।"

गीता का उपर्युक्त उपदेश करनेवाले जब प्रेम और भक्त के बस में होते हैं तो "ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भर छाछ में नचावे।"

मेरे कान्हा, कृष्ण, गोपाल मेरे जीवन में प्रकाश पुंज की तरह है, जो जीवन को पग-पग पर प्रकाशित करते हैं। वल्लभाचार्य से लेकर आज तक वे और उनका चरित्र प्रासंगिक है और यही कारण है कि हर सहृदय व्यक्ति उनके आनंद रूप में डूब जाता है फिर चाहे वह तुलसी हो या रसखान। श्रीकृष्ण से भक्ति और प्रेम का आनंद ही है कि आधुनिक शायर जुबेर अली ताबिश भी कह उठते हैं–

"बंशी सब सुर त्यागे है।
एक ही सुर में बाजे है।
हाल न पूछो मोहन का,
सब कुछ राधे-राधे है।"

कृष्ण हम सबके लिए आदर्श रूप है जिनका वर्णन सूरसागर, महाभारत, कृष्ण गीतावली, प्रियप्रवास, प्रेममाधुरी सुजान वाटिका आदि साहित्यिक ग्रंथों में कवियों ने बड़ी तन्मयता के साथ किया है। वही हमारे आदर्श रूप हैं। उनकी संपूर्णता उनका अद्भुत व्यक्तित्व ही हमारा आदर्श है। मैं अपने और श्रीकृष्ण के विषय में कहूँ तो बस इतना–

"तन ये वृंदावन हुआ, मन गोकुल बृजधाम।
रोम-रोम में है रमा, बस कान्हा का नाम।।"

o o o

ऋतंभरा

जिस भी राह पर चलोगे वह भगवान की राह है। कोई भी राह ऐसी नहीं है, जिसे पूरे संकल्प और समर्पण से पार करें और भगवान तक न पहुँचे।

o

॥ डॉ. अब्दुल लतीफ

एम. ए, हिंदी, पी-एच. डी. अध्यापक, राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर, उत्तरप्रदेश, 35 से अधिक शोध पत्र एवं आलेख प्रकाशित, प्रयोजनमूलक हिंदी और अनुवाद के विशेषज्ञ।

गीता दैनिक जीवन में

विषाद को योग कैसे बनाएँ?

कभी आप ने स्वयं को दुःख के उस तूफ़ान में घिरे पाया है, जहाँ कोई रास्ता नहीं सूझ रहा हो। परिस्थितियाँ आप के आत्मविश्वास को छिन्न-भिन्न कर रही हों। क्या कभी ऐसा हुआ है कि आप का जीवन बहुत सुंदर ढंग से चल रहा हो परंतु अचानक एक घटना ऐसी हो जाए, जब सब कुछ बिखरता सा लगे? कभी मन संशय और अनिर्णय की दोहरी खाई में फँस गया हो? ऐसे विषाद के क्षणों में श्रीमद्भगवदगीता भीतर की दुविधा के समाधान प्रस्तुत करती है।

o o o

पिछले अंक में गीता के प्रथम अध्याय जिसे विषाद योग कहा जाता है, उस पर चर्चा की गई। पहले तो विषाद क्या है और कैसे होता है इस पर चर्चा हुई। उसी चर्चा को आगे बढ़ाते हैं। विषाद के मूल में संशय, भ्रम, भय, दोष, दुःख और मोह होते हैं। जब तक हम इन सब को पहचान नहीं लेते, तब तक ये विषाद का कारण बने रहते हैं। कारण जानेंगे तभी तो निवारण होगा। कुछ गहराई से सोचें तो संशय का कारण मोह है। इच्छाओं और वस्तुस्थिति के बीच का अंतर है। विश्वास की कमी है। अपूर्णता का भास है। भ्रम का कारण सत्य को नकारना है। दुविधा है। भ्रम अनिर्णय की स्थिति उत्पन्न करता है। संशय से भ्रम उत्पन्न होता है। भ्रम से भय पैदा होता है। ठीक वैसे ही यदि कोई व्यक्ति अंधेरी रात में जंगल से गुजर रहा हो तो उसे दूर की झाड़ियाँ भी कम्बल लपेटे डाकू प्रतीत होने लगती हैं। सत्य तो यह है कि भय मन की कोरी कल्पना है। भीतर से निर्बल व्यक्ति की प्रकृति का प्रदर्शन है। स्वयं के दोष न पहचान पाने के कारण कर्मों में दोहराव होता है। यदि ग़लती हो रही है तो दोष खोजने के बदले व्यक्ति परिस्थितियों को दोषी ठहराने लगता है और भाग्य के माथे पर ठीकरे फोड़ने लगता है। दोष होने पर परिणाम सही नहीं होते, वही दुःख का कारण बनते हैं। ठीक उसी प्रकार मोह हमारे व्यवहार में अनदेखी करने की आदत डालता है। जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण धृतराष्ट्र और गांधारी हैं । भ्रम का उदाहरण भीष्म हैं। जब तक भ्रम पर विजय नहीं पायी गयी तब तक पांडव कौरवों की सेना को भेद नहीं पाए। प्रश्न उठता है क्या अर्जुन सच में युद्ध लड़ना नहीं चाहता? यदि ऐसा होता तो वह युद्ध क्षेत्र में आता ही नहीं। उसे यह पहले से पता था कि शत्रु कही जाने वाली सेना में कौन कौन होंगे। वह युद्ध लड़ने ही तो आया था, परंतु इस बार युद्ध जिन से लड़ना था वे परोक्ष नहीं थे बल्कि प्रत्यक्ष थे। प्रत्यक्ष में सब को देखते ही उसका मोह जागा। वह युद्ध के भयावह परिणामों के पूर्वानुमान और उसके बाद के अनदेखे

दृश्य को देख कर मोह से विषाद में बह गया। उसके बाद वह युद्ध से बचने के लिए अपनी शिथिल अवस्था में जो तर्क दे रहा था, वे विवेक से निकले तर्क नहीं थे, वे मोहग्रस्त मन के तर्क थे। वह मोह से जन्मे संशय, भय और दुःख को ढकने के लिए विवेक का सहारा ले रहा था। अर्जुन का एक अर्थ अनुराग होता है परंतु अनुराग और मोह में अंतर होता है। अनुराग में 'मैं' नहीं बचता, देना होता है। मोह में अपेक्षा होती है। अपेक्षा की अपूर्णता की सोच से ही भय और क्रोध उत्पन्न होते हैं। फिर अपने दायित्व से मुक्त होना कर्तव्य से मुँह मोड़ना है। वही अर्जुन कर रहा था। वह बहाने ढूँढ रहा था। वे सारे बहाने बना रहा था सर्वज्ञ गुरु, कृष्ण के सामने।

> गीता सच में शरणागति होने का भाव है। इसी लिए यह शरणागति से शुरू होती है और शरणागति में पूर्ण होती है। बहुत ही विचित्र स्थिति है, एक ओर अर्जुन कृष्ण से कहते हैं मैं आप का शरणागत हूँ आप मार्गदर्शन कीजिए, निर्देश दीजिए। वहीं स्वयं निर्णय भी ले रहे हैं कि वे युद्ध नहीं करेंगे।

> विषाद को योग बनाने की पहली शर्त है, शरणागत होना। अपने भीतर कृष्ण तत्व की शरण में जाना। उन्हें ईमानदारी से बिना किसी हिचक के स्पष्ट भाव से अपने दोष और दुःख कहना। इसका अर्थ यह हुआ कि आप ने खुले हृदय से अपना आत्मावलोकन करने के बाद सब कुछ उन्हें समर्पित कर दिया है। अब आप का विषाद प्रसाद बन गया।

ठीक यही स्थिति साधारण मनुष्य की होती है। जब भी लोग अपने कर्तव्य के मार्ग से हटते हैं वे सीधे सीधे कभी नहीं मानते कि उन्होंने कर्तव्य नहीं निभाया। अपनी ग़लती को छुपाने के लिए सौ बहाने बनाएँगे, हज़ार तर्क देंगे। चाहे कुतर्क ही देने पड़ें। इसी समय हम अपने भीतर झाँके, कितनी बार हमने अपनी ग़लतियों को छुपाने के लिए तर्क दिए हैं। बस यही सब से बड़ा गुनाह हो जाता है हम से। हम पर्दे डालने लगते हैं। क्यों नहीं स्वीकर कर पाते हम सामान्य मनुष्य हैं, हम से भूल हो जाती हैं। भूल होना अपराध नहीं है। अपराध है उस भूल को न स्वीकारना। उसे अपनी प्रवृत्ति बना लेना। यदि अपनी भूल स्वीकार कर लें तो सुधारने की गुंजाइश रहती है। अक्सर होता यह है की दूसरों से तो क्या हम खुद से भी अपने दोष छुपाने लगते हैं। यह भी स्वयं के साथ मोहग्रस्तता है। जबकि अंतरात्मा सावधान करती भी है। परंतु मन के क़ाबू में होने के कारण हम उसे अनसुना कर देते हैं। परंतु अकेले में वही सब कुछ जब भीतर मंथन के रूप में चलता है तो खिन्नता होती है, विषाद बढ़ता है।

हम यहाँ जो कुछ भी जानने का प्रयत्न कर रहे हैं वह अर्जुन के उदाहरण के द्वारा कर रहे हैं और कसौटी पर खुद को परख रहे हैं। अब यदि देखें तो अर्जुन कर्तव्य विमुख हो रहे हैं, वे इसे न्यायोचित ठहराने के लिए अहिंसा, कुल, समाज, भविष्य को लेकर पांडित्य दर्शा रहे हैं। कर्तव्य विमुखता पहला दोष, मोहग्रस्त मानसिकता दूसरा दोष। तीसरा दोष यह कि वह अपना कर्म और धर्म छोड़ अन्य धर्म को स्वीकारने के लिए तैयार हैं। वह सब कुछ छोड़ कर वन में चले जाना चाहते हैं। एक क्षत्रिय ब्राह्मण तपस्वी होने की बात कर रहा है। यहाँ स्वधर्म से अर्थ है जो करने के लिए हम आए हैं। हम यह भूल जाते हैं हम किसी अन्य पथ पर चलेंगे या कोई दूसरा कर्म करेंगे तो दुःख में रहेंगे। भीतर चित्त आनंद की अनुभूति नहीं कर पाएगा। विषाद का कारण बनेगा।

गीता सच में शरणागति होने का भाव है। इसी लिए यह शरणागति से शुरू होती है और शरणागति में पूर्ण होती है। बहुत ही विचित्र स्थिति है, एक ओर अर्जुन कृष्ण से कहते हैं मैं आप का शरणागत हूँ आप मार्गदर्शन कीजिए, निर्देश दीजिए। वहीं स्वयं निर्णय भी ले रहे हैं कि वे युद्ध नहीं करेंगे। यह विरोधाभास क्यों? कृष्ण जैसे गुरु, सर्वज्ञानी के समक्ष चतुराई? एक ओर कह रहे हैं मुझे सही राह दिखाओ और खुद ही फ़ैसला भी कर रहे हैं, युद्ध नहीं करूँगा। अपना धर्म छोड़ दूँगा। कुछ ऐसा ही हम सब करते हैं, भीतर विराजे कृष्ण अर्थात् आत्मा के साथ। परंतु हमारे और अर्जुन में एक अंतर है। वह बिना छल के सीधेपन से कह देते हैं कि वे युद्ध नहीं करेंगे। वे कृष्ण की शरण में खुद को सौंप देते हैं । शिष्यत्व स्वीकारते हैं । यहाँ अर्जुन ने अपने विषाद को कृष्ण को स्पष्ट कह दिया। उस पर आवरण नहीं डाला। विषाद और कृष्ण, परमेश्वर से योग। विषाद कैसे योग बन रहा है। यह है जाननेवाली बात।

विषाद को जान गए हैं तो योग को भी जान लेते हैं। योग किससे? भगवान से। विषाद इतना हो कि भगवान से मिला दे। अर्जुन भगवान से अपने दोष और दुःख स्पष्ट कह देते हैं। दुष्यंत कुमार की कविता के बोल इस बात को सुंदर ढंग से प्रस्तुत करते हैं - **'हो गई है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए, इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।'** अर्जुन जब कृष्ण को विषाद सुना देते हैं तो विषाद योग हो गया। अपना विषाद, अपनी पीड़ा, अपने दोष, अपने धर्म पथ से विमुख होने की सच्चाई कहने की सरलता हो तभी विषाद योग बनता है। 'अर्जुनत्वात् अर्जुनः'। अर्जुन का अर्थ है अर्जनशील। अर्जुन का एक अर्थ है जो ऋजु है, सरल है। इसका मतलब यह हुआ कि जो सहज, सीधे बिना किसी छल के अर्जन करता है। वही कृष्ण से अर्जन करने के लिए सरलता का भाव उन्होंने प्रस्तुत किया। भगवान को अपना विषाद अर्पित कर दें तो वह योग बन जाएगा। जब विषाद भगवान को भोग स्वरूप दें तो वह प्रसाद हो जाएगा। ईश्वर को जो भी हम देते हैं वह प्रसाद बन जाता है।

विषाद को योग बनाने की पहली शर्त है, शरणागत होना। अपने भीतर कृष्ण तत्व की शरण में जाना। उन्हें ईमानदारी से बिना किसी हिचक के स्पष्ट भाव से अपने दोष और दुःख कहना। इसका अर्थ यह हुआ कि आप ने खुले हृदय से अपना आत्मावलोकन करने के बाद सब कुछ उन्हें समर्पित कर दिया है। अब आप का विषाद प्रसाद बन गया। यहाँ एक बार फिर से अर्जुन के विषाद की तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं। पहली अर्जुन यह मानते हैं कि वह हन्ता या मारने वाले हैं और उनके द्वारा किसी की मृत्यु होगी। इस बात से यह समझ में आता है कि आत्मतत्व के प्रति वे भ्रमित हैं । उनकी सोच में संशय है। जिस पर कृष्ण दूसरे अध्याय में बात करते हैं। इसे हम यूँ भी कह सकते हैं कि हम कर्ताभाव पर केंद्रित रहते हैं। हम पूरे परिदृश्य को नहीं समझते और न ही देख पाते हैं। दूसरी बात है उनका संशय- क्या वे अपनों से युद्ध करें या न करें ? यह संशय मोहजनित है। मोह और आसक्ति को मिटाना गीता का दूसरा मुख्य भाग है। तीसरी बात- अर्जुन समझते हैं उन्हें

राज्य या शासन अपनों के सुख और सुविधाओं के लिए चाहिए। यहाँ वे भ्रमित हैं, राज्य स्वयं के लिए नहीं, यह लोकहित में कार्य करने के लिए कर्तव्य स्वरूप मिलता है। गीता का तीसरा मुख्य उद्देश्य है- स्वधर्म को निभाने की शिक्षा देना।

विषाद तब आरम्भ होता है, जब मन का न हो। विषाद तब होता है जब हम अपने सिवा कुछ और नहीं सोचते। विषाद तब शुरू होता है जब हम मन के आधीन हो जाते हैं। विषाद जब योग बनता है तो हम अपनी निर्बलता और कमियों को समझने और उनको मिटाने के लिए ईमानदारी से प्रयास करते हैं। जब हमारे पास कोई महान और महत्वपूर्ण लक्ष्य नहीं होता तो हम भावनाओं के अतिरेक में बह जाते हैं। हमारी बुद्धि धुंधला जाती है। अंधकार दिखायी देने लगता है। बाधाएँ लक्ष्य से बड़ी लगने लगती हैं। हम अपनी कमज़ोरियों को छुपा कर उन्हें और बढ़ाने लगते हैं। हमारी स्थिति कुरुक्षेत्र के विषादग्रस्त अर्जुन से भिन्न नहीं होती। तब भीतर आत्मा स्वरूप कृष्ण की शरण में समर्पण का अर्थ है, सब कुछ स्पष्ट अर्पित कर दें। स्वतः ही हमारी अंतःप्रेरणा हमें गीता के ज्ञान से अनुप्राणित करेगी। हम अपने कृष्ण की वाणी को खुले हृदय से स्वीकार करेंगे। विचलितता, कम्पन, भय और दुःख विलीन हो जाएँगे। याद रहे समस्याएँ भीतर के सामंजस्य में केवल कुछ उथल- पुथल है। जैसे ही उस असामंजस्य को सुधार लेंगे, विषाद मिट जाएगा। विषाद योग बन जाएगा।

o o o

ऋतंभरा

सब तरफ़ एक ही सत्ता है। जिसे जान लिया तो सब जान लिया। जब और कोई है नहीं तो न भय और न आसक्ति। न राग, न द्वेष। यही है वीतरागता।

o

स्थितप्रज्ञ होने का अर्थ है बुद्धि कि स्थिरता। राग, द्वेष की धारा में न बहना। जब स्थितप्रज्ञता प्राप्त हो जाती है तो कल्याण होना निश्चित है।

o

सुरक्षा अनगिनत अस्त्र- शस्त्र रख लेने से नहीं मिल सकती। यदि सुरक्षा कहीं है तो आपसी विश्वास और एक दूसरे के प्रति सदभावना में है।

o

हर साधना केवल मन की शांति और स्थिरता के लिए की जाती है। स्थिर मन ही ब्रह्म में लीनता है।

o

उस परम चैतन्य से एकत्व हमें आध्यात्मिक ऊर्जा से भर देता है। ध्यान की यही पराकाष्ठा समाधि है।

o

|| पवन के. सेठी

प्रकाशक और मुख्य संपादक 'कृष्ण प्रज्ञा'

कृष्ण प्रेमी

आदरणीय डॉ. सूरदास प्रभु जी के सान्निध्य में एक अंतरंग शाम

इस्कॉन संघ के जुहु मुंबई के श्री श्री राधा रासबिहारी मंदिर के सुखद और भक्तिमय वातावरण में एक विशेष आकर्षण है, अनेक बार मंदिर के कीर्तन को राधा कृष्ण की मूर्ति के समक्ष बैठकर सुना है। कुछ दिन पहले राधा कृष्ण के दर्शन के बाद मैं मंदिर के प्रांगण को पार कर, पहली मंज़िल पर आदरणीय डॉ. सूरदास प्रभु जी के कक्ष में पहुँच गया। डॉ. सूरदास प्रभु जी से भेंट मेरे एक अभिन्न मित्र श्री चंद्रकांत विद्यार्थी जी ने करवाई थी। मैं उन्हें 'कृष्ण प्रज्ञा' के प्रथम अंक को भेंट करने गया था। एक शांत और सादगी भरे कक्ष में डेस्क के पीछे, गौर वर्ण के सम्भ्रांत और सरल व्यक्तित्व के स्वामी प्रभु जी गुलाबीपन लिए गेरुआ रँग के वस्त्रों में विराजे हुए थे, उन्होंने अपनी आकर्षक मुस्कान से मेरा स्वागत किया। मैंने झुककर उनका अभिवादन किया और उन्हें 'कृष्ण प्रज्ञा' भेंट की। उन्होंने भेंट स्वीकार करने के बाद कृष्ण प्रज्ञा का अवलोकन किया और बहुत ही खुले दिल से पत्रिका को सराहा, साथ ही पूछ भी लिया, " क्या इसी भव्यता को बनाए रखोगे अगले अंकों में?" मैंने नम्रता से उत्तर दिया, " प्रभु जी कृष्ण से प्रेम है तो हृदय से उत्कृष्ट देने का पूर्ण प्रयत्न होगा शेष तो कृष्ण जी स्वयं देख लेंगे"। वे मुस्कुरा दिए और कहने लगे, " तब तो हमारा सहयोग सदा रहेगा"। मैंने कृतज्ञता भरे शब्दों में उनके इस सहयोग की भावना को स्वीकारा साथ ही उनसे अंतरंग चर्चा के लिए समय माँगा, जो उन्होंने सहर्ष दे दिया।

ठीक समय पर मैं प्रभु जी के कक्ष में उनके सामने बैठा था और हमारी बातचीत आरम्भ हुई तो न जाने कब अतीत में चली गई, मेरे सामने उस समय माननीय डॉ. सूरदास प्रभु जी का भोला सा चेहरा एक सात वर्ष के नन्हें से कश्मीरी बालक के चेहरे में परिवर्तित हो गया। उस मासूम चेहरे की निर्दोष आँखों में कश्मीर की बर्फ़ीली शुभ्रता स्पष्ट दिखाई दे रही थी। वह सात वर्ष का साढे तीन फ़ुट ऊँचाई का बालक, जिसे पिता सर्द सुबह में पानी के छींटे डालकर प्यार से उठा देते, और वह जल्दी से तैयार होकर बगीचे में जाकर ताजे फूल ला कर माँ को देता, माँ उन फूलों से माला बनातीं, जिसे लेकर वह नन्हा बालक तेज़ी से भागते हुए हनुमान मंदिर पहुँचता, मन में एक चाह और उमंग भरा उत्साह इस बात का कि उसकी माँ के हाथों की माला हनुमान जी के गले में उस सुबह की पहली माला होगी। साढ़े तीन फ़ुट का बालक और सामने सात फ़ुट के हनुमान, साहस और शक्ति के प्रतीक रामसेवक हनुमान मानो प्रतीक्षा ही करते थे इस बालक की। श्रीनगर के कश्मीरी पंडित और जाने माने चित्रकार श्री जगन्नाथ सप्रू का वह पुत्र आज मेरे सामने डॉ. सूरदास प्रभु जी के रूप में विराजित है।

जब अतीत के झरोखे से यादों की हवा आने लगी तो कई हृदय स्पर्शी झौंके भी बहने लगे, 1957 में जन्मे, डॉ. सूरदास प्रभु जी पर प्रभाव घर के संस्कारों का रहा। घर में माँ का वात्सल्य, भक्ति, अध्यात्म और प्रेम की भावना सींचता रहा। पिता के संसर्ग से कला के प्रति लगाव बढ़ा। घर का माहौल सात्विक होने के कारण 21 वर्ष तक की आयु तक कभी बाहर का भोजन नहीं खाया, डॉ. सूरदास प्रभु जी ने।उन्होंने श्री प्रभात कॉलेज चेन्नई से पढ़ाई पूरी , वह भी पोस्ट ग्रैजूएशन फ़िल्मस में। प्रभु जी शिक्षा पूरी कर मुंबई आ गए और विज्ञापन फ़िल्में, शॉर्ट फ़िल्मस आदि बनाने की एक कम्पनी चलाने लगे। सब कुछ तो ईश कृपा से

सही चल रहा था। परंतु नियति और प्रारब्ध कुछ अलग ही योजना बनाए बैठे थे।

1978 का वर्ष था, जब वे इस्कॉन के सम्पर्क में आए। मानो सब कुछ रूपांतरित हो गया। 7 ऑक्टोबर से 9 अक्टूबर के तीन दिनों में उन्होंने परम पूज्य ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के प्रवचन सुने मानो भीतर बिजली कौंध गयी। मानो संसार कहीं पीछे छूट गया। वह हनुमान मंदिर तक दौड़कर जाने वाला बालक कृष्ण के कमल चरणों में समर्पित हो गया और गुरु मिला तो परम पूज्य स्वामी श्रील. प्रभुपाद जैसा। उन दिनों में मानो गुरु कृपा की वर्षा ने रोम रोम भर दिया था। सब कुछ पूरी तरह बदल गया। वे पूर्ण रूप से अपने गुरु को समर्पित हो गए और कृष्ण जीवन में उतर आए। 'बलिहारी गुरु आप ने गोविंद दियो मिलाए' यथार्थ में चरितार्थ हो गया।

नए शब्द, नयी पुस्तकें, गुरु की वाणी, श्रीमद्भगवदगीता और चैतन्यामृतम का गूढ़ अध्ययन और उसके रसपान ने प्रतिदिन भीतर का घट भरना शुरू कर दिया। अब वे परम पूज्य प्रभुपाद जी की शिक्षाओं के प्रसार में और मंदिर की व्यवस्था में जुट गए। जीवन में आनंद बरसने लगा। व्यवसायिकता के स्थान पर कृष्णभक्ति और चिंतन भर गए।

मैंने पूछा आप की दिनचर्या क्या है? उन्होंने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया, " जल्दी सोता हूँ, जल्दी ब्रह्म मुहूर्त में उठ जाता हूँ। नाम जप और पूजा कर्म के साथ दिन शुरू होता है और इसी तरह पूरा होता है। दिन भर इस्कॉन की व्यवस्था और प्रबंधन को समर्पित है। मन में कभी और कोई भाव आता ही नहीं। केवल परम पूज्य स्वामी प्रभुपाद जी ही प्रेरणा देते हैं। "भागवतम के 18000 श्लोकों का संस्कृत से अंग्रेज़ी में अनुवाद, श्रीमद्भगवदगीता यथावत अंग्रेज़ी में अनुवाद, चैतन्यामृतम का अंग्रेज़ी अनुवाद मेरे गुरु ने किया है", उन्होंने कहा। इन शब्दों को कहते हुए उनके चेहरे पर गुरु के प्रति कृतज्ञता का भाव उभर आया।

मैंने पूछा परम पूज्य स्वामी श्रील. प्रभुपाद की प्रमुख शिक्षाएँ कौन सी हैं जिनका प्रचार और प्रसार किया जाता है। उन्होंने बहुत श्रद्धा से अपने गुरु का नाम लेते हुए कहा, "उनकी पुस्तकें उनके कृष्णभावनामृत आन्दोलन तथा इस्कॉन संस्था का आधार हैं। श्रीकृष्ण को ही वे अपने व समस्त जगत के जीवन का आधार मानते थे। हमारे लिए सबसे बड़ा मंत्र है 'हरे रामा-हरे रामा, राम-राम हरे हरे, हरे कृष्ण-हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण हरे हरे'। चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन का प्रसार, श्रीमद्भवदगीता के दर्शन को लोगों तक पहुँचाने और भगवान श्रीकृष्ण की विशुद्ध प्रेमाभक्ति द्वारा कैसे इस जीवन को "पुनरपि जननं पुनरपि मरणं" के चक्र से बचाया जाए कुछ प्रमुख शिक्षाएँ हैं।

मैं जितनी देर डॉ. सूरदास प्रभु जी के पास रहा मैंने देखा कि वे अपने गुरु के प्रति पूर्ण समर्पित हैं। मैंने जब उनसे इस बारे में कहा तो वे

बोले, "मैं बहुत भाग्यशाली हूँ मुझे परम पूज्य स्वामी प्रभुपाद जैसे गुरु मिले। हम गुरु परम्परा में विश्वास करते हैं। जो कुछ भी मिला है वह गुरुमुख से है, इसी विश्वास में सब कुछ है। हम केवल गुरु को समर्पित हैं शेष गुरु देख लेंगे। उनकी कृपा बनी रहती है।

जब मैंने प्रभु जी से पूछा कि ख़ाली समय में क्या करना पसंद करते हैं? वे बोले, "ख़ाली समय होता ही कहाँ है? यह सत्य भी है, डॉ. सूरदास प्रभु जी बहुत व्यस्त रहते हैं। वे प्रवचन देते हैं, कीर्तन करते हैं और नयी योजनाओं पर सतत कार्य करते रहते हैं। इस समय भी कई महत्वपूर्ण पदों का उन पर दायित्व है। वे इस्कॉन खारघर नयी मुंबई के अध्यक्ष हैं, इस्कॉन जुहु की मैनेजमेंट कमिटी के सदस्य हैं, इस्कॉन इंडिया अइवाइज़री कमिटी के सदस्य हैं। साथ ही भक्ति कला क्षेत्र के मैनेजिंग ट्रस्टी हैं। इतने पदों का कार्यभार केवल निष्ठा और अनासक्ति से ही हो सकता है।

प्रभु जी से चर्चा करते हुए समय का पता ही नहीं चला। तभी उन्होंने एक छोटे से स्टील के बॉक्स से कुछ पेड़े निकाले और सुंदर से डिब्बे में डालकर मुझे दे दिए। यह प्रसाद ले जाओ। उसके बाद उन्होंने अपना आसन छोड़ा और जगन्नाथ जी की मूर्ति के सामने प्रार्थना करने लगे, मैं उनके कक्ष से बाहर आ गया। वे कुछ क्षणों बाद कक्ष से बाहर आए और बोले, " आप की कृष्ण प्रज्ञा को जगन्नाथ जी का आशीर्वाद प्राप्त है। आप अपना कार्य करते रहिए"। मैं भी इस दिव्य संदेश से अभिभूत हो गया। फिर मिलने का वचन लेकर मैं लौट आया। इस भेंट की स्मृति सच में पारिजात के फूलों की भीनी भीनी सुगंध की भाँति बार बार अंतर्मन को महका देती है।

- पवन के. सेठी

o o o

कृष्ण काव्य

o

कृष्ण कौन हैं?

कौन बताए
कृष्ण कौन हैं?
समय साक्षी; स्वयं मौन हैं।
कौन बताए
कृष्ण कौन हैं?

o

कृष्ण पीर हैं,
दर्द-व्यथा की अकथ कथा हैं।
कष्ट-समुद ही गया मथा हैं।
जननि-जनक से दूर हुए थे,
विवश पूतना, दुष्ट बकासुर,
तृणावर्त, यमलार्जुन, कालिय,
दंभी इंद्र, कंस से निर्भय
निपट अकेले जूझ रहे थे,
नग्न-स्नान कुप्रथा-रूढ़ि से,
अंधभक्ति-श्रद्धा विमूढ़ से,
लड़े-भिड़े, खुद गाय चराई,
वेणु बजाई, रास रचाई।
छूम छनन छन, ता-ता-थैया,
बलिहारी हों बाबा-मैया,
उभर सके जननायक बनकर,
मिटा विपद ठाँड़े थे तनकर,
बंधु-सखा, निज भूमि छोड़ क्या
आँखें रहते सूर हुए थे?
या फिर लोभस्वार्थ के कारण
तजी भूमि; मजबूर हुए थे?
नहीं 'लोकहित' साध्य उन्हें था,
सत्-शिव ही आराध्य उन्हें था,
इसीलिए तो वे सुंदर थे,
मनभावन मोहक मनहर थे।
थे कान्हा गोपाल मुरारी
थे घनश्याम; जगत बलिहारी
पौ फटती लालिमा भौन हैं।
कौन बताए
कृष्ण कौन हैं?
समय साक्षी; स्वयं मौन हैं।
कौन बताए
कृष्ण कौन हैं?

o

कृष्ण दीन हैं,
आम आदमी पर न हीन हैं।
निश-दिन जनहित हेतु लीन हैं।
प्राणाधिक प्रिय गोकुल छोड़ा,
बन रणछोड़ विमुख; मुख मोड़ा,
जरासंध कह हँसा 'भगोड़ा',
समुद तीर पर बसा द्वारिका
प्रश्न अनेकों बूझ रहे थे।
कालयवन से जा टकराए,

कृष्ण काव्य

आक्रांता मय दनु चकराए,
नहीं अनीति सहन कर पाए,
कर्म-पंथ पर कदम बढ़ाए।
द्रुपदसुता की लाज न जाए,
मान रुक्मिणी का रह पाए,
पार्थ-सुभद्रा शक्ति-संतुलन,
धर्म वरें, कर अरि-भय-भंजन,
चक्र सुदर्शन लिए हाथ में

शीश काटते क्रूर हुए थे?
या फिर अहं-द्वेष-जड़ता वर
अहंकार से चूर हुए थे?
नहीं 'देशहित' साध्य उन्हें था,
सुख तजना आराध्य उन्हें था,
इसीलिए वे नटनागर थे,
सत्य कहूँ तो भट नागर थे।
चक्र सुदर्शन के धारक थे,
शिशुपालों को ग्रह मारक थे,
धर्म-पथिक के लिए पौन हैं।
कौन बताए
कृष्ण कौन हैं?
समय साक्षी; स्वयं मौन हैं।
कौन बताए
कृष्ण कौन हैं?

कृष्ण छली हैं,
जो जग सोचे कभी न करते।
जो न रीति है; वह पथ वरते।
बढ़ें अकेले; तनिक न डरते,
साथ अनेकों पग चल पड़ते।
माधव को कंकर में शंकर,
विवश पाण्डवों में प्रलयंकर,
दिखे; प्रश्न-हल सूझ रहे थे।
कर्म करो फल की चिंता बिन,
लड़ो मिटा अन्यायी गिन-गिन,
होने दो ताण्डव ता तिक धिन,
भीष्म-द्रोण के गए बीत दिन।
नवयुग; नवनिर्माण राह नव,
मिटे पुरानी; मिले छाँह नव,

सबके हित की पले चाह नव,
हो न सुदामा सी विपन्नता,
और न केवल कुछ में धनता।
क्या हरि सच से दूर हुए थे?
सुख समृद्धि यशयुक्त द्वारिका
पाकर खुद मगरूर हुए थे?
नहीं 'प्रजा हित' साध्य उन्हें था,
मिटना भी आराध्य उन्हें था,
इसीलिए वे उन्नायक थे,
जगतारक शुभ के गायक थे।
थे जसुदासुत-देवकीनंदन
मनुज माथ पर शोभित चंदन
जीवनसत्व सुस्वादु नौन हैं।

कौन बताए
कृष्ण कौन हैं?
समय साक्षी; स्वयं मौन हैं।
कौन बताए
कृष्ण कौन हैं?

॥ आचार्य संजीव वर्मा 'सलिल'

संपादक- हिंदी 'कृष्ण प्रज्ञा'

समीक्षा

'मैं प्रेम हूँ'

राधाभाव रश्मि का अनूठा कौशल

[कृति विवरण– 'मैं प्रेम हूँ', उपन्यास, डॉ. रश्मि कौशल, ISBN–978-81-9439048-0, प्रथम संस्करण 2020, आकार डिमाई, आवरण बहुरंगी, पेपरबैक, पृ.सं. 184, मूल्य, 275 रुपये, शिल्पायन बुक्स, शाहदरा, दिल्ली, कृतिकार संपर्क : 9711282391]

'मैं प्रेम हूँ' उपन्यास एक दैवीय अनुभव, सृष्टि से पहले सृष्टि के बाद, रूप और नियम, पृथ्वी पर अवतरण, मिलन, बचपन, गोवर्धन, संबंध, स्पर्श, महारास, विवाह, घर-आँगन, मान, मथुरागमन, विरह, प्रयोजन, उद्धव प्रकरण, मेरा जीवन, मार्गदर्शन, भ्रमण, विलयन, संदेह प्रश्न, तथा सार संग्रह शीर्षक 24 अध्यायों में विभक्त है। हर शीर्षक कथाक्रम की प्रतीति कराता है। विवेच्य कृति में पूर्व रश्मिजी काव्य संग्रह 'बारिश की दीवारें' तथा 'दरख्त का दर्पण', कहानी संग्रह, 'यह शहर की धूप है' तथा विज्ञानाधारित उपन्यास 'मुरली एक रहस्यकथा' का प्रणयन कर चुकी हैं। व्यावसायिक तकनीकी क्षेत्र में राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय परिसंवादों में 24 शोधालेख प्रस्तुत कर रश्मि बहुश्रुत और बहुचर्चित हुई हैं।

रश्मि कौशल

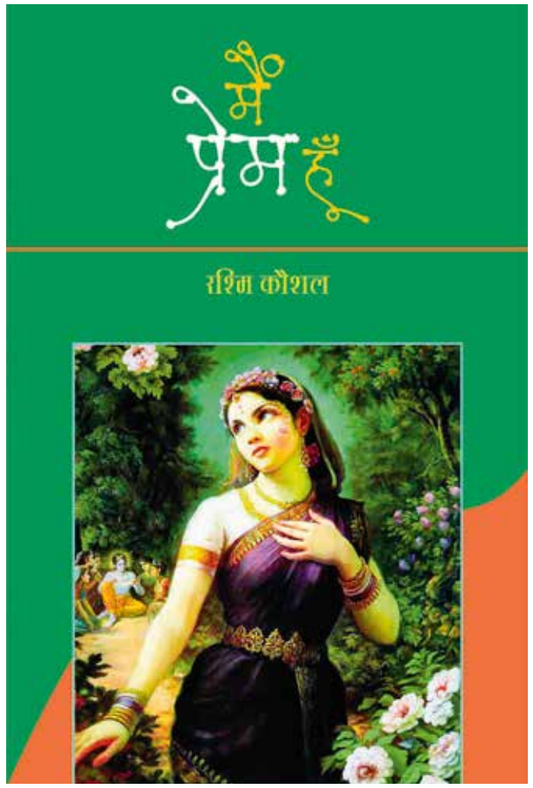

'मैं प्रेम हूँ', न तो शत-प्रतिशत प्रामाणिक दस्तावेज है, न ही कपोल-कल्पना। यह लोक मान्यताओं, पौराणिक साहित्य, लोक परम्पराओं, वैयक्तिक चिंतन तथा प्रचलित धारणाओं का तर्क संगत सुव्यवस्थित सिलसिलेवार विश्लेषण करता कथाक्रम है। मैं प्रेम हूँ की कथावस्तु सृष्टि रचना पूर्व दैवीय तत्वों के विमर्श, राधारानी के अष्ट रूपों का प्राकट्य, महारास, राधा का प्राकट्य, दाम्पत्य आदि लेखिका की मनःसृष्टि की उपज है। मौलिक चिंतन तथा तर्क सम्मतता के ताने-बाने से बुना गया कथानक यथावश्यक पौराणिक साहित्य से समरसता स्थापित कर अपनी तथ्यपरकता की प्रतीति कराता है। इस तकनीक ने मौलिक चिंतन को दिशाभ्रम से बचाकर लोक-मान्यताओं से मिलाया है।

'सृष्टि से पहले' के घटनाक्रम की बृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित कथा से साम्यता है। पुरुष (ब्रह्म) से उत्पन्न राधा (प्रेम) से सृष्टि उत्पन्न होने का वर्णन अद्भुत है। प्रेम का उद्भव पुरुष के हृदय में होना, प्रेम का पृथक् प्रकट होना, प्रेम के मन में प्रश्न और पुरुष द्वारा उत्तर पठनीय

है पुरुष और प्रेम से सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन रोचक बन पड़ा है। तुम प्रेम हो, तुम्हारी उत्पत्ति मेरे हृदय से हुई है। मैं इस अनंतनिद्रा अवस्था में था। मैंने तुमको अपने भीतर अनुभव किया, मुझमें स्पंदन हुआ मैं भी तुमसे ही जागृत हुआ।

"...जैसे तुम मेरे अंदर थीं, मैं तुम्हारे अंदर हूँ। तुम्हारे बिना मैं भी कुछ नहीं है।... तुम्हारी प्रेम-ऊर्जा से संसार की रचना होगी। जैसे तुम मेरे हृदय के केंद्र में स्थित थीं, अब यह सारा अनगिनत ब्रह्माण्ड अनंत तक होगा और तुम उसका केंद्र होंगी । तुम्हारे बिना सृष्टि असंभव है, इसलिए तुम्हारा जन्म हुआ है।" इस प्रसंग में पुरुष से प्रेम की उत्पत्ति वर्णित है तथा प्रेम से सृष्टि के जन्म का संकेत है। प्रेम कहता है– "पुरुष मुझे अपनी तरफ खींच रहा था, जैसे मैं फिर से उसमें समा जाऊँगा। पुरुष ने प्रकृति को इशारा किया। प्रकृति ने तुरंत मेरे पैरों में नूपुर बाँध दिए और पुरुष के हाथ में बाँसुरी दे दी। मेरे कदम बढ़े और नूपुरों की ध्वनि निकली, साथ ही बन रही सृष्टि में गूँजा एक मधुर संगीत बाँसुरी का संगीत। पुरुष एक के बाद एक धुनें बजा रहा था, मेरे कदम जो उसमें समाने के लिए निकले थे, वे धीरे धीरे नृत्य करने लगे। पुरुष भी झूम रहा था और हम दोनों के कदमों की आवाज से, नृत्य और संगीत से हुए कंपन से सृष्टि में निर्माण हुआ अनंत ब्रह्माण्ड, अनेक सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र, देव, यक्ष, गंधर्व, ब्रह्मराक्षस, असुर और अनेकानेक प्राणियों की उत्पत्ति हुई।" यहाँ प्रकृति कौन है, कहाँ से आई, प्रकृति पुरुष से उत्पन्न हुई या पुरुष प्रकृति से, जैसे प्रश्न उठते हैं किंतु अनुत्तरित हैं।

पुरुष के चरणों से 'काल' का जन्म जहाँ 'काल' वहाँ 'मोह' से परे, सृष्टि निवासियों द्वारा सीमोल्लंघन, महाविष्णु, महादेव, पुरुष, प्रेम का सृष्टि के सुचारु संचालन हेतु गोलोक में अवतरण... यहाँ पुनः प्रश्न उठता है कि महाविष्णु व महादेव पुरुष से उत्पन्न हुए या उनकी स्वतंत्र सत्ता है? जिस तरह 'पुरुष' से 'प्रेम' उत्पन्न हुआ क्या वैसे ही महाविष्णु व महादेव से भी किसी तत्त्व की उत्पत्ति हुई? गोलोक के नीचे बैकुण्ठ और शिवलोक का संकेत है किंतु भूलोक या अन्य लोकों का नहीं।

'मैं प्रेम हूँ' में मुख्य तथा गौण पात्रों का चरित्र-चित्रण स्थूल रूप से कम, उनकी मनोवृत्ति के संकेत के रूप में अधिक है। इस तकनीक से लेखिका ने अनावश्यक विस्तार से बचकर कथा को गति तथा दिशा देने में सफलता पाई है। इसी तरह कथोपकथन में पारस्परिक प्रश्नोत्तरी संवाद न्यून तथा वर्णनात्मक अभिकथन अधिक है। यह शिल्प हर संवाद के माध्यम से वह उद्घाटित करती है जिससे कथा तथा घटनाक्रम आगे बढ़ते रहे। घटनाओं को क्रमानुसार न रखकर, कथाक्रम की उपादेयता के अनुसार रखा गया है। इस तरह लेखिका अपनी विचार सरिता में पात्रों को भटकाव के भँवर से बचाकर सुरक्षित पार लगा सकी है।

डॉ. रश्मि कौशल एक लगभग अछूते विषय पर 'मैं प्रेम हूँ' उपन्यास के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति सामर्थ्य की छाप छोड़ सकी हैं। कथ्य का संक्षेपीकरण-सरलीकरण, नीर-क्षीर-विश्लेषण, घटनाओं की तारतम्यता, पौराणिक प्रसंगों का यथार्थपरक वर्णन तथा सुगठित कथाक्रम कृति की पठनीयता में वृद्धि करता है। राधाभाव भक्ति का विज्ञान-सम्मत विश्लेषण, राधाभाव धारा को नव आयाम देकर तर्कणा प्रधान नव पीढ़ी को जोड़ने में महती भूमिका का निर्वहन कर सकता है। डॉ. रश्मि कौशल साधुवाद की पात्र हैं।

o o o

|| समीक्षक -
आचार्य संजीव वर्मा सलिल

उत्कृष्ट कवि, लेखक, वक्ता और हिंदी के संचार और प्रसार को समर्पित सामाजिक कार्यकर्ता। संस्थापक और संचालक– 'विश्ववाणी हिंदी संस्थान जबलपुर' और 'समन्वय प्रकाशन जबलपुर।' आचार्यजी ने छंदःशास्त्र पर विशेष शोध, 500 से अधिक नए छंदों का सृजन, 7 कविता संग्रह प्रकाशित, 300 से अधिक पुस्तकों की समीक्षा और अनेक भाषाओं में लेख साहित्य को दिए हैं।

ऋतंभरा

मोह का मतलब विवेकहीन हो जाना।
बुद्धि का पलट जाना। जो अनुचित है
वह उचित लगने लगे और उचित अनुचित
लगने लगे तो समझ लो मोह ने घेर लिया।

o

मैं कौन हूँ? मेरा अस्तित्व क्या है?
यह अपने को जानने की साधना सत्य में
स्वाध्याय यज्ञ है। यही ज्ञानयज्ञ है।

o

भ्रमित होने का अर्थ है अनावश्यक को करना और
आवश्यक और अनिवार्य को छोड़ना।

o

इस विशेषांक के चित्रकार

नील वर्ण कृष्ण के भक्त प्रणय गोस्वामी

फोटोग्राफ: महेश पडिया

संस्कार से पुष्टिमार्गी, आत्मा से कलाकार और नीलवर्ण कृष्ण की छवि हृदय में बसाए एक कलाकार जिसकी रग रग में कृष्ण की भक्ति बहती है, उससे भेंट का एक सुखद अनुभव पाठकों के साथ साझा करने का आनन्द अद्भुत है। प्रणय गोस्वामी से मिला तो उनके व्यक्तित्व में एक विशेष आकर्षण पाया।

मस्तक पर तिलक, शुद्ध भारतीय वेषभूषा, मुख पर हल्की मुस्कान, हिंदी में गुजराती भाषा की झलक और हाव भाव में सहजता। कोई भी प्रणय से मिले तो प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। वही मेरे साथ हुआ, जब हमारी बातचीत आगे बढ़ी।

प्रणय से परिचय कृष्ण प्रज्ञा के डिज़ाइन संपादक श्री जैन कमल ने पिछले वर्ष करवाया था। मैंने जब उनसे कृष्ण प्रज्ञा के लिए सहयोग माँगा तो उनके शब्द बहुत सुखद लगे। उन्होंने बहुत सरलता से कहा, " कृष्ण के लिए कुछ भी करूँगा। कमल भाई ने मिलाया है, मैं उनका आभारी हूँ। आप को जितने चित्र चाहिए मैं सामर्थ्य अनुसार दूँगा। बस आप देख लीजिए मेरी शैली आप की पत्रिका के उपयुक्त है या नहीं!! उन्होंने अपने कुछ चित्र उसी समय प्रेषित कर दिए। उनके द्वारा बनाए एक चित्र ने मुझे मानो मंत्र मुग्ध कर दिया, मैंने उसी समय 'जिज्ञासा विशेषांक' के कवर पेज के लिए उस चित्र को छापने की अनुमति माँग ली। जो उन्होंने सहज स्वीकार कर ली। यूँ उनकी मेरी मित्रता का सिलसिला शुरू हो गया।

प्रणय कृष्ण भक्ति के पुष्टि मार्ग के अनुयायी हैं। वे परम श्रद्धेय वल्लभाचार्य जी महाराज के वंशज हैं, उन्हें कृष्ण भक्ति घुट्टी के साथ विरासत में मिली है। बड़ोदा निवासी प्रणय गोस्वामी की शिक्षा दीक्षा बड़ोदा में ही हुई। उन्होंने बड़ोदा के एम. एस. विश्वविद्यालय से फ़ाइन आर्ट्स में डिग्री प्राप्त की। आरम्भ में व्यावसायिक तौर पर चित्रकारी की और 2000 हज़ार से अधिक चित्र बनाए। इसी बीच प्रणय एक बार जब श्रीनाथ मंदिर के दर्शन करने गए और एक चमत्कार हो गया। सामने कृष्ण की मूर्ति को देख उनका हृदय भाव विह्वल हो उठा। वहीं उन्हें प्रेरणा मिली, मानो कृष्ण के नील वर्ण के अतिरिक्त उनके लिए कुछ और हो ही नहीं। कृष्ण के जीवन की लीलाएँ क्षण भर में आँखों के सामने चलचित्र की तरह चलने लगीं। प्रणय मानो पूर्ण रूप से कृष्ण रँग में रंगे गए।

प्रणय बताते हैं नाथद्वारा के मंदिर में जैसे ही उन्होंने कृष्ण के चरणों में मस्तक टेका, उन्हें साक्षात दर्शन हो गए। उसी पल उन्होंने संकल्प कर लिया, कृष्ण के चित्रों पर ही कार्य करूँगा। उनकी दृष्टि में कृष्ण के भाव और उनकी लीला पारम्परिक शैली से अलग है। जिसमें उनकी

मौलिकता की छाप है। हालाँकि, वे भारतीय चित्रकारी के प्रशंसक ही नहीं बल्कि उसमें ओतप्रोत लिप्त हैं।

जब उनसे पुष्टि मार्ग पर चर्चा हुई तो उन्होंने बताया कि पुष्टिमार्ग हिंदू वैष्णव सम्प्रदायों में से एक है। यह परम आदरणीय वल्लभाचार्य जी महाराज द्वारा प्रतिपादित किया गया। पुष्टि मार्ग 16वीं शताब्दी में आरम्भ हुआ था। जिसका आधार शुद्धाद्वैत दर्शन है। जो भक्त कृष्ण की भक्ति के लिए साधन निरपेक्ष हो, जीव भगवान का अनुग्रह करे। इसमें भगवान स्वयं दयालु हो कर जीव पर दया करते हैं का भाव है।। यह नवधा भक्ति है। यह प्रेम लक्षणा भक्ति है। जिसे सेवा द्वारा पुष्ट किया जाता है। प्रणय इस सम्बंध में बात करते हुए भावुक हो जाते हैं।

उन्होंने बताया कि उनके काका, आदरणीय प्रातः स्मरणीय ब्रजेश कुमार महाराज जी जो कि कांकरोली, राजस्थान में निवास करते हैं। वे बहुत बड़े विद्वान हैं, उनका विशेष मार्गदर्शन करते रहे। जिसके कारण प्रणय नवधा भक्ति और प्रेम लक्षणा भक्ति में विश्वास करने लगे। उन्हें प्रतीत होता रहता है कृष्ण नित्य लीला करते हैं। हर क्षण लीलारत हैं। प्रणय कृष्ण को स्नेह से ठाकुर पुकारते हैं। उनके ठाकुर हर समय प्रेम का संदेश देते हैं, उनके हर भाव से प्रेम छलकता है।

जब मैंने कहा कि उनके चित्रों में कृष्ण के केश दिखाए नहीं देते, इसका कोई विशेष कारण? । उन्होंने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया, " ध्यान से देखेंगे तो केश चोटी के रूप में बँधे हैं। और कृष्ण का नील वर्ण ही 'दि विज़न ऑफ ब्लू गॉड' सिरीज़ की प्रेरणा है। गर्गाचार्य ऋषि की गर्गसंहिता में कृष्ण की छवि श्वेत, रक्त और पीत की प्रतीत हुई, परंतु अम्बर की छाया से नीलवर्ण का आभास देने लगी, तब गर्ग ऋषि ने उनका नाम कृष्ण रखा।" वे इतने पर ही नहीं रुके। उन्होंने बताया, " कृष्ण की छवि ब्रज में 100 प्रतिशत दिखायी देती है। वृंदावन तो अद्भुत है, हर घर में ठाकुर जी का मंदिर है। वहाँ का कण -कण कृष्ण भक्ति से सराबोर है।"

मैंने उनसे कुछ ऐसे प्रश्न भी पूछे जो कि जिज्ञासा और उत्सुकता के कारण मन में उठे।

प्रणय कृष्ण की कौन सी छवि आप को मोहित करती है?

उनका उत्तर मिला- उनका सम्पूर्ण स्वरूप, इसीलिये मैंने उन्हें कमलनाभ के रूप में भी चित्रित किया। कृष्ण का बाल स्वरूप तो अद्भुत है। बस निहारते ही रहो।

आप को कौन सा भजन प्रिय है?

वे बोले-' सूरदास के पद, उनमें से विशेष जो गुनगुनाता हूँ, वह है-

दृढ़ इन चरण कैरो भरोसो, दृढ इन चरणन कैरो।
श्री वल्लभ नख चंद्र छटा बिन, सब जग माही अंधेरो॥
साधन और नही या कलि में, जासों होत निवेरो॥
सूर कहा कहे, विविध आँधरो, बिना मोल को चेरो॥

आप को सबसे अच्छा क्या लगता है?

प्रणय उत्तर देते हैं- कृष्ण भक्ति के सिवा कुछ अच्छा नहीं लगता। मेरी कूचियाँ और रँग समर्पित हैं कृष्ण को। बहुत नियम से रहता हूँ। मैं पुष्टि मार्ग का पूर्ण आचरण करता हूँ। बाहर का कुछ नहीं खाता। यहाँ तक कि चाय भी नहीं पीता।

आप के स्टूडियो में कभी कृष्ण एकदम सामने आ जाएँ तो क्या करोगे?

प्रणय- सामने तो रहते हैं सदा। हाँ अगर आप ये कह रहे हैं कि प्रकट हो जाएँ तो!! तब तो मैं उनके चरण पकड़ लूँगा और एक ही बात कहूँगा, मुझे और मेरे कर्म को स्वीकार करते रहें।

प्रणय यहाँ से यह जीवन यात्रा कहाँ?

प्रणय गम्भीर हो गए और बोले- दिशा एक ही है, चरण शरण में जा कर बस जाऊँ।

प्रणय की आँखों में नमी उनकी श्रद्धा प्रकट कर रही थी। मैं उनके साथ उस कमरे में खड़ा हुआ दीवारों को देख रहा था, चारों ओर कृष्ण का नील वर्ण और छवियाँ, बीच कमरे में रंगों की कटोरियाँ, ब्रश और श्वेत वस्त्रधारी एक मनीषी सा एक चित्रकार भाव विभोर खड़ा था। मैंने विदा माँगी और उन्होंने नतमस्तक हो कर आग्रह स्वीकार लिया। मैं प्रणय के कमरे से बाहर निकल आया और लौटते हुए यही सोचता रहा- कृष्ण भक्ति कला की पराकाष्ठा पर ले जाती है, यह सत्य है। मैंने पाया है सूरदास, मीरा, हरिदास कृष्ण रस में डूब गए थे और उसी शृंखला में एक नाम प्रणय गोस्वामी का भी जुड़ेगा। जो पाठक प्रणय गोस्वामी की पैंटिंग्स ख़रीदना चाहते हैं या उनसे सम्पर्क करना चाहते हैं, वे उनसे बात कर सकते हैं।

प्रणय गोस्वामी का फ़ोन नम्बर है
+91 932 720 7712.

- पवन के. सेठी

जिज्ञासा

श्रीमद्भगवद गीता मूल ग्रंथ में कितने श्लोक थे? आज की गीता में कितने श्लोक हैं? इस अंतर का कारण क्या है?

आदि शंकराचार्य ने गीता के जिन 700 श्लोकों की व्याख्या की है, उन्हें आज गीता का मूल स्वरूप माना जाता है। इस पाठ में 574 श्रीकृष्ण द्वारा, 84 अर्जुन द्वारा, 41 संजय द्वारा और 1 धृतराष्ट्र द्वारा कहे गए हैं। गीता के इसी स्वरूप को बाद के व्याख्याकारों ने मान्यता दी है। लेकिन काश्मीर की परम्परा में 745 श्लोक हैं। इसके अनुसार श्रीकृष्ण के द्वारा 620, अर्जुन के द्वारा 57, संजय के द्वारा 67 तथा धृतराष्ट्र के द्वारा 1 श्लोक कहे गये हैं। वास्तव में 'गीता' एवं 'गीतासार' दोनों को एक साथ जोड़ देने के कारण काश्मीरी पाठ में श्लोकों की संख्या बढ़ गयी है। इसी पाठ पर अभिनवगुप्त की जो टीका है, उसमें 704 श्लोक हैं। गीता का एक अनुवाद लगभग 1000 वर्ष पूर्व प्राचीन जावा द्वीप की भाषा में हुआ था। इस गीता में 528 श्लोक ही रहे हैं, हालाँकि गीता के 10वें अध्याय में जावा के इस संस्करण में अधिक श्लोक भी हम पाते हैं। सम्भावना है कि जावा का यह पाठ मूल गीता के रूप में रहा हो। जावा से प्राप्त प्राचीन पाण्डुलिपियों में जो श्लोक मिलते हैं, उनमें से 70 उसी रूप में गीता के वर्तमान पाठ में उपलब्ध हैं। आर्य समाज के संस्थापक दयानंद सरस्वती पुनर्जन्म तथा अवतारवाद को नहीं मानते हैं, अतः उनके मत से गीता में 9वें से 12 अध्याय बाद में जोड़े गए हैं तथा हर अध्याय में 2 से 10 तक श्लोक बाद के हैं। उन्होंने दार्शनिक मत को लेकर गीता के श्लोकों की संख्या में अंतर माना है। इसके बावजूद शंकराचार्य के द्वारा प्रस्तुत गीता का स्वरूप आज मान्य है, जिसमें 700 श्लोक हैं।

महाभारत में कितनी गीताएँ हैं? उनका अर्थ क्या है?

'गीत' शब्द का अर्थ है– जिसे गाया गया हो। चूँकि सभी कल्याणकारी उपदेशों के मूल में उपनिषद् माने जाते हैं, और उपनिषद् शब्द स्त्रीलिंग है अतः स्त्रीलिंग में 'गीता' शब्द का प्रयोग होता है। महाभारत के भीष्मपर्व के अंतर्गत श्रीकृष्ण के द्वारा दिए गए उपदेश (1) भगवद्-गीता के नाम से प्रसिद्ध हैं लेकिन अन्य ग्रन्थों के उपदेशात्मक प्रसंगों को भी गीता के नाम से जाना जाता है। उद्धव-गीता, राम-गीता, पराशर गीता ऐसे ही उपदेश के प्रसंग हैं जो विभिन्न पुराणों में पाये जाते हैं। महाभारत में भी अनेक प्रसंगों को गीता के नाम से जाना जाता है। विद्वानों ने 94 गीताओं का अन्वेषण किया है जिनमें (2) पराशर गीता शान्तिपर्व के 290-98 अध्याय तक सबसे बड़ी है। इसके अतिरिक्त (3) षड्जगीता (4) पिंगला गीता, (5) शम्पाक गीता, (6) मंकिगीता, (7) आजगर गीता, (8) हारीत गीता, (9) वृत्र गीता, (10) पुत्र गीता, (11) कामगीता, (12) हंसगीता, (13) नारद गीता तथा (14) उत्तर गीता ये कुल 14 गीताएँ भी मानी गयीं हैं।

प्राचीन काल में राजा जनक को मुनि पराशर ने धर्म की परिभाषा बतलायी थी। उस प्रसंग को शांति पर्व में भीष्म पराशर गीता के नाम से युधिष्ठिर को बतलाते हैं। षड्जगीता शान्तिपर्व के

आपद्धर्म पर्व में है, जिसमें पाँच पाण्डव तथा महात्मा विदुर इन छह व्यक्तियों के विचार हैं। पिंगला गीता शान्तिपर्व के मोक्षधर्म पर्व में ही भीष्म तथा युधिष्ठिर के संवाद के रूप में है। भीष्म ने शम्पाक नामक महात्मा से जो उपदेश सुना था, उसे युधिष्ठिर को शम्पाक गीता में बतलाते हैं। मंकि गीता में भी मंकि मुनि का उपदेश भीष्म युधिष्ठिर को सुनाते हैं। पूर्वकाल में एक विरक्त महात्मा ने प्रह्लाद को जो बातें कहीं थी, उन्हें भीष्म युधिष्ठिर को आजगर गीता में बतलाते हैं। इसी प्रकार हीरात, वृत्र तथा पुत्र गीता भी भीष्म के द्वारा युधिष्ठिर को दिये गये उपदेश हैं। कामगीता भगवान् कृष्ण द्वारा युधिष्ठिर को दिया गया उपदेश है, जिसमें कहा गया है कि यह मेरा है, इस भावना को छोड़ देने से मन का डर दूर हो जाता है। हंस गीता में भीष्म युधिष्ठिर को हंस रूप में भगवान् के द्वारा दिये गये मोक्षधर्म के उपदेश हैं। नारद गीता में शुकदेव जी को नारद मुनि ज्ञान तथा वैराग्य का उपदेश देते हैं। उत्तर गीता आश्वमेधिक पर्व में अनुगीता नामक उपपर्व में है। 18 अध्यायों वाली गीता को बाद में जब अर्जुन भूल गये तब कृष्ण ने फिर से स्मरण दिलाने के लिए इस उत्तरगीता का उपदेश किया।

जब मृत्यु शैया पर भीष्म थे, उनकी श्रीकृष्ण से क्या वार्ता हुई थी?

महाभारत के शान्ति पर्व, राजधर्मानुशासन, अध्याय 50 में प्रसंग आया है कि जब भीष्म पितामह उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा करते हुए शरशय्या पर लेटे हुए थे, तब एक दिन कृष्ण युधिष्ठिर को साथ लेकर उनके पास पहुँचे। सबसे पहले कृष्ण ने उनकी वीरता, सहनशीलता, तेज आदि गुणों का बखान किया और अंत में उनसे आग्रह किया कि युद्ध में अपने सगे-संबंधियों की मृत्यु हो जाने से युधिष्टिर बहुत दुखी हैं अतः, धर्म का उपदेश देकर आप उनका दुख दूर कर सकते हैं। अगले अध्याय के अनुसार भीष्म ने भगवान के रूप में कृष्ण की स्तुति की। भीष्म ने उनसे प्रार्थना की कि मैं आपकी शरण में आया हुआ हूँ, आप मेरा कल्याण करें। इस पर कृष्ण ने उन्हें मोक्ष का वचन दिया। अंत में कृष्ण ने कहा कि आप पाण्डवों को धर्म का उपदेश दें । भीष्म ने बाणों से बिंध जाने की तकलीफ का हवाला देते हुए कुछ बोल पाने में अपने को लाचार बतलाया। तब कृष्ण ने उन्हें वरदान दिया कि आपको

दर्द, बेहोशी, दर्द , भूख, प्यास आदि कुछ नहीं होगा। आपकी बुद्धि भी पहले जैसी ही तेज रहेगी और आपकी बोली में कोई परिवर्तन नहीं आएगा। इसके बाद 54 वें अध्याय में कृष्ण तथा भीष्म के बीच बातचीत हुई है। इसमें कृष्ण ने कहा है कि मैंने आपको जो दिव्य ज्ञान दिया है, उसके प्रभाव से धर्म के विषय में आप जो कुछ उपदेश करेंगे वह वेद वचन के समान माना जाएगा। कृष्ण ने आगे कहा कि राजधर्म के सही रूप में पालन होने से जनता मोक्ष पाती है अतः राजधर्म में ही मोक्षधर्म भी निहित है। इसलिए, हे भीष्म! आप युधिष्ठिर से राजधर्म को उपदेश दें कि किस तरह प्रजा का पालन करना चाहिए। इस विषय में आपसे बढ़कर उपदेश करने वाला मैं दूसरे किसी को नहीं देख रहा हूँ। इसके बाद कृष्ण ने युधिष्ठिर को आगे कर भीष्म के सामने खड़ा किया। भीष्म उपदेश देने लगे।

॥ पंडित भवनाथ झा

बुद्धचरितम, भ्रूणपंचाशिका आदि पुस्तकों के लेखक। 18 से अधिक ग्रंथों का सम्पादन। 10 से अधिक शोधलेखों की प्रस्तुति। वर्तमान में पटना से प्रकाशित 'धर्मायण' पत्रिका के प्रकाशक और संपादक।

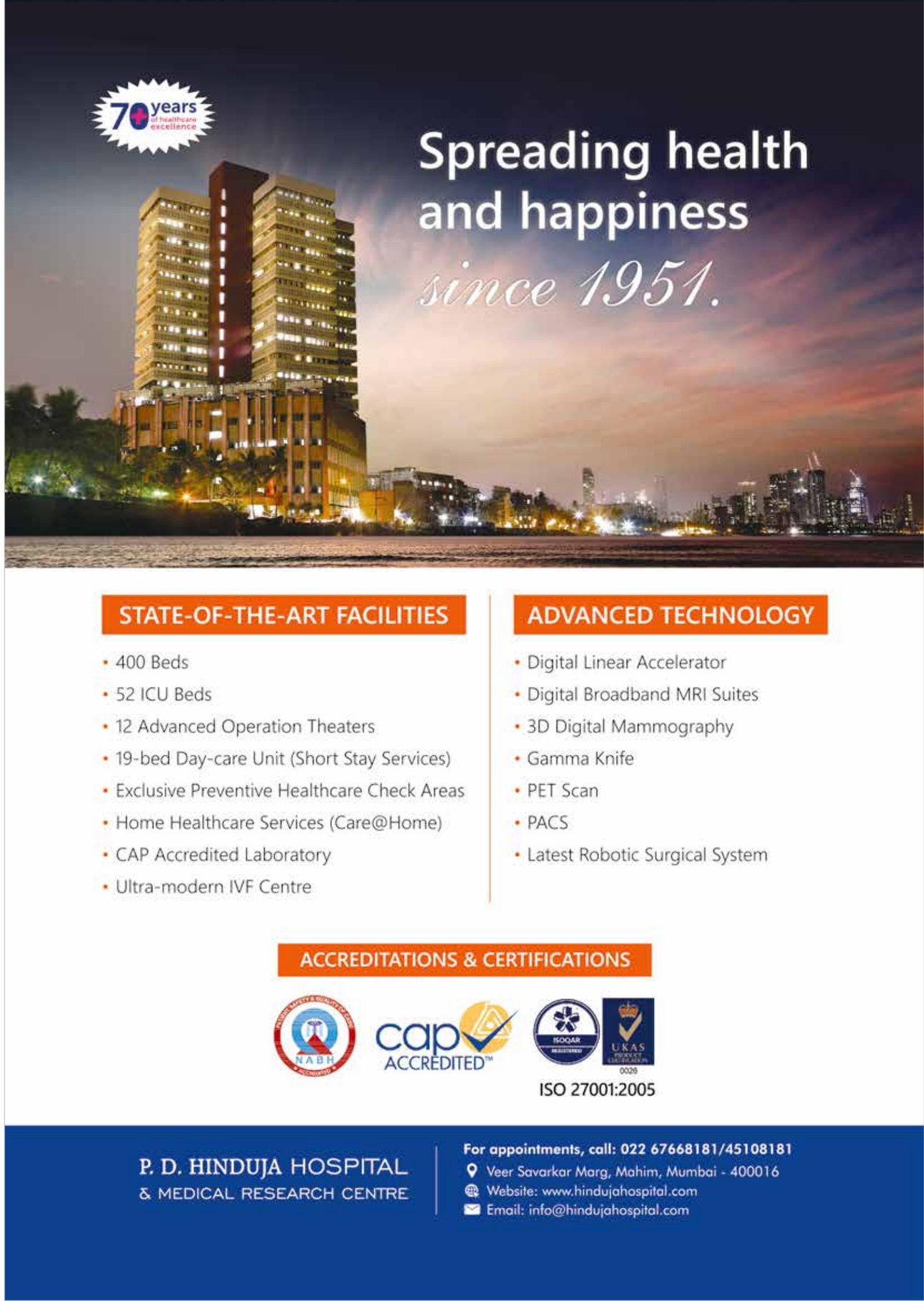

bob World

बैंक ऑफ़ बड़ौदा
Bank of Baroda
विजया VIJAYA | देना DENA

Azadi Ka Amrit Mahotsav

EARN HIGHER INTEREST FOR LESSER DAYS

Baroda TIRANGA Plus DEPOSIT SCHEME

7.50%* P.A.

FOR 399 DAYS

*Other T & C Apply

Call Toll Free No. (24x7): 1800 258 44 55 | 1800 102 44 55 | www.bankofbaroda.in | Follow us on